राय कमल

(एक लघु उपन्यास)

लेखक
ताराशंकर वंद्योपाध्याय

अनुवादक
हंसकुमार तिवारी

प्रकाशक
जनवाणी-प्रकाशन

निवेदन

भारतीय भाषाओं में बँगला, गुजराती, मराठी, तेलगू आदि भाषाओं का साहित्य बहुत विकसित है। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा के पद पर अब आसीन हुई है। विश्व की अन्यान्य भाषाओं के उच्च साहित्य से राष्ट्रभाषा के साहित्य को बहुत कुछ लेना है, पर पहले हिन्दीसाहित्य-भाण्डार को भारतीय भाषाओं के उच्च साहित्य से भरना हमें परमावश्यक मालूम होता है। इसी लक्ष्य को सम्मुख रख हम अपने पाठकों के सम्मुख 'रायकमल' उपस्थित कर रहे हैं।

वंग भाषा के सुविख्यात उपन्यासकार श्री ताराशङ्कर वन्द्योपाध्याय के प्रसिद्ध उपन्यास 'राईकमल' का हिन्दी अनुवाद—'रायकमल' है। श्री ताराशङ्कर बाबू का यह उपन्यास वंग भाषा-भाषियों के बीच

बहुत आदृत और लोकप्रिय रहा है। इसका मुख्य कारण है कि यह युग-धर्म का प्रतिनिधित्व करता है, इसके पात्रों में उच्चादर्शों के साथ आदर्श-पालन की अद्‌भुत् क्षमता का दिग्दर्शन लेखक ने बड़े कलात्मक ढंग से कराया है। लेखक की वर्णन-शैली बड़ी अनूठी है। विषय का प्रतिपादन लेखक ने बड़े ही स्पष्ट ढंग से किया है। 'रायकमल' के पाठकों को इसके पढ़ने से आज के नये समाज का दर्शन प्राप्त होगा।

मेरे निवेदन करने पर श्री ताराशंकर बाबू ने अपनी उक्त पुस्तक के हिन्दी-संस्करण के लिए मुझे सहर्ष अनुमति प्रदान की। उन्होंने हमें अपने सत्परामर्श से समय-समय पर प्रोत्साहित किया है, एतदर्थ हम उनके प्रति आभार ज्ञापन करते हैं।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि पं० हंसकुमारजी तिवारी ने इस पुस्तक का बंगला से हिन्दी अनुवाद किया है। हमने यथासाध्य शुद्ध-सुन्दर रूपमें अपने हिन्दी-प्रेमी पाठकों के सम्मुख इसे उपस्थित करने का प्रयत्न

आशा है, हमारे हिन्दी-प्रेमी पाठक इसे अपनायेंगे और हम शीघ्र ही अन्यान्य सुलेखकों की सत्कृतियों को अपने प्रेमी पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने में समर्थ होंगे।

—प्रकाशक

प्राथमिकी

आधुनिक बँगला-साहित्य में जिन दो-तीन कथा-शिल्पियों के नाम सब से पहले लिये जाते हैं, श्री ताराशंकर वंद्योपाध्याय उनमें अन्यतम हैं। उपन्यास के क्षेत्र में इन्होंने एक ऐसी मौलिक अन्तर्दृष्टि, एक ऐसी रस-सृष्टिकारिणी प्रतिभा का परिचय दिया है, जो इसके पहले नहीं दिखायी पड़ी थी। यों युग और जीवन के प्रति ईमानदारी, प्रकृति और प्राण की गहराई तक पैठ, पारदर्शी पर्यवेक्षण शक्ति, जीवन की अज्ञात दिशा के उद्‌घाटन की क्षमता, चरित्रों के वैचित्र्य का वैभव, प्रांजल और प्रवाह-मयी भाषा, घटना-परम्परा में नाटकीयता—ऐसी विशेषतायें हैं, जिनकी हमें एक औपन्यासिक से अपेक्षा रहती है। ताराशंकर में ये सामान्य विशेषतायें तो हैं ही, इनके अतिरिक्त भी कुछ है, जो साहित्य की वेदी को इन्हीं की प्रतिभा के जादू ने दिया है। इनकी निजस्वता का यह श्रेय वही है, जिसे मैं मौलिक अंतर्दृष्टि कह आया हूँ।

युग के रंगमंच पर जीवन के अनेक रूपों के पात्र इन्होंने उतारे हैं। वे पात्र समाज की सभी श्रेणियों के जीव हैं—सब की अपनी समस्यायें हैं—सब का अपना परिवेश है। वास्तव और जीवंत तो वे इतने हैं कि सब में से मिट्टी-पानी की ताजगी की बू आती है, सब निर्मित मूर्तियों में धड़कन का भान होता है—पास-पड़ोस का चीन्हा-जाना-सा कोई जीवन की कटुता और विषमता की गहराई से पहचान के समान सिर उठाता हुआ दिखायी पड़ता है। अनेक-रूपता का वैचित्र्य उनमें इतना है कि कोई एक दूसरे की परिछांई नहीं—उनमें से सब अपने ढंग से अपना जीवन जी रहे हैं—सब का अपना अलग व्यक्तित्व है—एक दूसरे के बीच

निजत्व की बड़ी चौड़ी खाई है। किंतु इसके बावजूद जीवित युग की चेतना में युगातीत का संधान और संदेश है। जीवन के उन खंड-रूपों में अखंड और संपूर्ण जीवन-धारा की एकतारता की ध्वनि गूँजती है। लगता है, लेखक ने जिस प्रकृति, जिस समाज और जिन मनुष्यों के भिन्न और नवीन रूपों को हमारी आँखों के आगे उपस्थित किया है, वे एक दूसरे से दूर और भिन्न होते हुए भी एक ही अखंड जीवन के पूरक हैं— कार्य और कारण के एक अविच्छिन्न सूत में सब गुँथे हुए हैं। जैसे सितार के सब तारों की ध्वनि अपनी है, सर्वथा स्वतंत्र है, परंतु उनकी सामूहिकता से जीवन की एक ही मूलरागिनी झंकृत होती है, सुर के उस वैषम्य में एक अभंग एकता विराज रही है।

अंतर्दृष्टि की ऐसी अजेय शक्ति कल्पना और भावुकता के आवेग से नहीं मिलती ; तथ्य, तत्त्व एवं उपादानों के माल-मसाले जुटाने की श्रम-साध्य लगन से भी नहीं मिलती, न ही पुस्तक-पाठ के अध्यवसाय से मिलती है। इसके लिये तो दुनिया की खुली किताब, सृष्टि के कारखाने में रमने की जरूरत है, जहाँ समय और परिस्थिति के साँचे में जीवन के ढंग-ढंग के पुतले ढलते रहते हैं, जहाँ आँखों का समंदर पीकर ओठों को मुस्कुराना पड़ता है, जहाँ विवशताओं की राखों से पुते हुए जीवन के अंदर सत्य की चिनगारी अंतराल में दबी रहती है, जहाँ जीवन के स्वरूप की परिछांई बाहरी प्रकाश के दर्पण में सर्वथा उलटी पड़ती है। यह एक साधना है, तप है, योग है। ताराशंकर ने यह तप किया है और इसलिये हम पाते हैं कि उन्होंने जितनी भी मूर्तियाँ गढ़ी हैं, उनमें न केवल वैचित्र्य का कौतूहल और चमत्कार है, बल्कि आत्मचेतना की मार्मिकता है—जीवन का स्पंदन है। जिन्हें हम देखकर भी नहीं जानते, ऐसे रूपों की पहचान का एक अकाट्य प्रमाणपत्र वे हमारे सामने हाजिर कर देते हैं।

इसमें लेखक की तटस्थता भी एक बहुत बड़ी विशेषता है, जिसका कि इस सफलता में बहुत बड़ा हाथ है। लेखक के किसी पूर्वग्रह ने पात्रों का गला नहीं दबोचा है, जीवन के संबंध में अपनी किसी निश्चित नीति, वैज्ञानिक या दार्शनिक मत, साहित्यिकवाद का हौआ इन्होंने खड़ा नहीं किया है, लिहाजा पात्रों का विकास चरित्र की अपनी विशेषताओं के अनुरूप हुआ है, लेखक के संस्कार की तानाशाही के अनुसार नहीं। रंगमंच के प्रत्येक अभिनेता की जैसे अभिनय की स्वतंत्रता में प्राम्पटर कोई दखल नहीं देता—उसी तरह लेखक ने अपनी रुचि के अनुसार पात्रों के लिये लीक नहीं बनायी है, उन्हें अपनी राह पर, अपने ही ढंग से मंजिल की ओर जाने दिया है और उस यात्रा की चलती-फिरती तस्वीर औरों के लिये तैयार की है। इस आत्मनिरपेक्ष दृष्टि से पात्रों का सहज विकास संभव हुआ है। चूंकि अपने विचारों और रुचि के आईने में जीवन को न देखकर, उन्होंने उसे उसी के रूप में देखा, उसका उसी जैसा बिंब ग्रहण किया, उसका एक सुन्दर परिणाम उनकी कृतियों में स्पष्ट है। वह है कथा-वस्तु और चरित्रों का संबंध। संबंध यह कि कहानी का महल खड़ा तो चरित्रों की नींव पर ही होता है, लेकिन कहानी सिर्फ चरित्रों की समष्टि नहीं हो पाती, उनमें घटना-परंपरा की रोचकता और नाटकीय गतिशीलता भी आ जाती है। चरित्र भी फोटोग्राफ के चित्रों जैसे स्थिर और एकांगी नहीं हो पड़ते, उनमें विकास का एक अटूट क्रम, परिणति की एक विचित्र सुन्दरता भी समाविष्ट हो जाती है। ऐसा संयोग बहुत अधिक देखने को नहीं मिलता।

ताराशंकर के लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास हैं और सब से हमें इसी निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ता है। जीवन को देखने की इनकी जो दृष्टि है, वह इन्हीं की है। यों वस्तु-विन्यास और चरित्र-चित्रण आदि से ये प्रतीत तो सोलहोआने वास्तववादी होते हैं। आज का जीवन, आज

के जीवन की जलती समस्यायें, अभाव, विषमता—सब कुछ कठोर वास्तव-दृष्टि के परिपोषक हैं ; किंतु सब कुछ के होते हुए भी जीवन की कठोर वास्तविकता के पीछे के उस रहस्यमय पहलू को ये नहीं भुला सके हैं। परिस्थिति या प्रकृति के कानून को इन्होंने मानव-भाग्य का विधाता नहीं माना है, मनुष्य के जीवन-रहस्य ने प्राकृतिक नियम की कठोरता को जो श्री और समृद्धि दी है, उस अदृश्य, अलक्षित रहस्य का संकेत इनकी रचना में है।

हिंदी के पाठकों द्वारा कथा के इस जादूगर की रचनायें आदृत होंगी, इसका हमें विश्वास है। ग्राम्य चित्र और चरित्रों का इतना अच्छा वैचित्र्य, उनकी इस खूबी के साथ परिणति दिखायी गयी है कि दंग रह जाना पड़ता है। आशा है, हिंदी के पाठक इनकी रचनाओं से आनन्द और तृप्ति पायेंगे। इसी इच्छा से इन पुस्तकों का हिंदी-रूपांतर प्रस्तुत करने की प्रेरणा हुई थी। पुस्तक की अच्छाई का श्रेय उस समर्थ कलाकार को है, कहीं यदि त्रुटियाँ हों, तो वह मेरे अनुवाद का दोष जानिये, जिसके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। हिंदी में इन्हें ला सकने की अपनी इच्छा स्वप्न ही रहती, यदि प्रकाशक महोदय सब प्रकार का कष्ट उठा लेने को तैयार नहीं होते। हम आप दोनों ही उनके समान रूप से कृतज्ञ हैं कि उन्होंने इनके लिये श्रम और अर्थ-व्यय में किसी भी प्रकार की कोर-कसर नहीं रक्खी।

मानसरोवर, गया
ता० १० दिसम्बर, ५०

—*हंसकुमार तिवारी*

एक

पच्छिमी बंगाल के राढ़ देश का जो हलका अजय नदी के किनारे पड़ता है, उसकी एक अपनी विशेषता है। पच्छिम के जयदेव-केंदुली से लेकर कटवा के अजय और गंगा नदी के संगम तक, सब कुछ कृष्णमय हो रहा है! वैष्णवों का बड़ा ही पुराना इलाका है यह। जिन दिनों शांतिपुर अब डूबा, तब डूबा की दशा में पहुँचा था और नवद्वीप बह-सा गया था, उसके बहुत-बहुत पहले ही इस इलाके के लोगों ने मुरली की वह धुन सुनी थी, जो 'धीर समीरे यमुना तीरे' बजा करती। यहाँ की सुन्दरियाँ बाँकी चितवन के डोरे डालकर श्याम-शुक को फँसाना और प्रेमकी जंजीर से जकड़कर हृदय के पिंजड़े में बन्द करना जानती थीं। यहाँ के मामूली से मामूली लोगों को भी इस बात का पता था कि सुख और दुख, दोनों भाई-भाई हैं। जो सुख के लिये प्यार करते हैं, दुख भी उन्हीं के गले पड़ता है।

लोग तिलक लगाया करते, गले में तुलसी की माला पहना करते ; यह तिलक-माला उनमें आज भी मौजूद है। मर्द माथे में चोटी रखते थे, आज भी रखते हैं ; स्त्रियाँ जूड़ा बाँधा करती थीं। अब तरह-तरह के जूड़े बाँधने का रिवाज चल पड़ा है। फिर भी नहाने के बाद दिन में कम से कम एक बार तो जूड़ा वे जरूर बाँधती हैं। रात को कहीं बाँसुरी की आवाज सुनायी देनेपर एक बच्चे की मा अन्न-पानी नहीं ग्रहण करतीं—उन्हें पुत्र के वियोग से तड़पनेवाली यशोदा की याद आ जाती है।

गाँव ज्यादातर खेतिहरों के ही हैं। दस-बीस गाँवों में कहीं दो-एक बस्ती ब्राह्मण और भले लोगों की मिलती है। खेतिहरों में प्रधानता सद्गोपों की ही है, और-और जाति के लोग भी हैं। सभी माला पहनते, तिलक लगाते हैं, हाथ जोड़कर बोलने-बतियाते हैं, 'प्रभु' सम्बोधन करते हैं। मँगते राधाकृष्ण का नाम लेकर द्वार पर हाथ फैलाते हैं ; वैष्णव झाल-मृदंग लिये आते हैं, वैष्णव-वैष्णवी इकतारा और मजीरा बजाते आते हैं। बाऊल अकेले आते हैं और इकतारा लेकर। यहाँ तक कि मुसलमान फकीर भी बेला बजाकर पुत्र-शोक से पागल यशोदा-विलाप के गीत गाते हैं ! शाम को वैष्णवों के अखाड़ों पर पदावली गायी जाती है, गाँवों के चंडीमंडप में भजन-कीर्त्तन होता है ; घर-घर छप्परों से झूलते हुए पिंजड़े में देशी मैना 'राधाकृष्ण, कृष्णराधा गोपी भजो' की रट लगाती है। बड़े चाव से लोग मालती और माधवी की लतायें लगाते हैं। हर तालाब के बाँध पर कदम्ब के

पेड़ लगे हैं। शायद कदम्ब का पेड़ लगाना जरूरी-सा है। बरसात के दिनों कदम्ब के पेड़ फूलों से गदरा जाते हैं और उनकी ओर देख-देखकर बूढ़े-पुराने यों ही रो-रो उठते हैं।

लेकिन; वे दिन तो अब रहे नहीं। लोगों की पहली तन्दुरुस्ती जाती रही, तरह-तरह की बीमारियाँ घर कर गयी हैं, शोक और दुःख का औसत भी बहुत बढ़ गया है। कोठी के अन्न चुक गए हैं, गौशाले की गायें घट गयी हैं, सब कुछ हुआ है मगर फिर भी लोगों का स्वभाव वही है, ज्यों का त्यों, वैसा ही। 'हरि' का नाम मुँह पर आते ही आँखें बरस पड़ती हैं—उन दोनों भाइयों—गौर-निताई—को याद करके लोग रो पड़ते हैं। 'सुख और दुःख दो भाई हैं'—यह सत्य उनका सहज ज्ञान है। 'धीर समीरे यमुना तीरे'—आज भी वहाँ मुरली बजती है।

इसी इलाके में खेतिहरों का एक छोटा-सा गाँव। मिट्टी के घर, कच्चे रास्ते, रास्तों के दोनों तरफ की परती जगहों में तरह-तरह के फूलों का मेला। भाँटी, कस्तूरी और नयनतारा के थोक-थोक लाल-सफेद फूल। घने बबूलों के जंगल से तुलसी की आती हुई भीनी-भीनी महक। पानी-भरे गड्ढों में स्त्रियाँ बर्तन मलती हैं, कपड़े फींचती हैं, बाँध पर बाँसों की भीड़ से करुणाभरी आवाज उठती है; कदम्ब, शिरीष, आम, जामुन और कटहल के पेड़ों पर चिड़ियाँ गाती हैं। किसान खेतों में जाते हैं, औरतें घर-गिरस्ती करती हैं, साग-सब्जी पटाती हैं, कद्दू-कोंहड़े की लत्तियों का सेवा-जतन करती हैं। बच्चों में से कुछ या तो सबेरे

पाठशाला जाते हैं या नहीं भी जाते, घर ही गाय-गोरू की सेवा करते हैं।

गाँव के उत्तर छोर पर वैष्णवों का एक छोटा-सा अखाड़ा है, वही इस कहानी का केन्द्र है। सघन पेड़ों की ठंढी घनी छाँह में यह एक कुंज-भवन जैसा ही है। नाम है हरिदास का कुंज। इसे हरिदास महंथ ने बनाया था। चारों ओर से अखाड़ा बेड़ों से घिरा है। जहाँ-तहाँ आम, अमरूद, जामुन, नीम, सहिजन के पेड़ों की प्रसन्न छाया गहरी ममता के समान अखाड़े के अंग-अंग को जकड़े हुए है। पीछे की ओर बाँस के कुछ झाड़ झूमते हुए मानों आकाश से बातें करते हैं! ऐसे ही घिरे दायरे के अन्दर दो ओर मिट्टी के दो घर, उनकी गोद में रंगीन मिट्टी से लिपा-पुता एक छोटा आँगन। साफ-सुथरा—झकाझक लोग कहा करते हैं, सिंदूर भी गिरे, तो आसानी से उठा लिया जाय! आँगन के ठीक बीच में एक पौधे से मालती और माधवी की दो लतायें लिपटकर ऊपर उठ गयी हैं। बाँसों के मजबूत मचान पर दोनों फैलती जाती हैं और सालभर बारी-बारी से फूलती रहती हैं। इस वितान के पत्तों की सघनता में फुलसुंघी का बसेरा है। वे नन्हीं चिड़ियाँ पराग चुनती हैं और सूर्योदय से सूर्यास्त तक मीठा-मीठा बोलती रहती हैं।

अखाड़े में रहती हैं मा और बेटी—कामिनी और कमलिनी। गाँव के लोग अपनी जबान में उन्हें 'मा-धी' कहते हैं। भीख पर उनकी दुनिया चलती है। कामिनी मजीरा लेकर गाती हुई भीख

माँग लाती है। किशोरी बेटी कमलिनी घर ही रहती है। गिरस्ती का कार्म-काज करती है, अड़ोस-पड़ोस के साथी-सहेलियों से खेलती है, गुनगुनाकर गाती रहती है। गाना अभी वह सीख ही रही है। भीख माँग लाने की उमर उसकी अभी हुई नहीं। हाँ, संगीत पर उसका एक सहज अधिकार है। उसका बाप हरिदास महंथ उस इलाके का नामी-गिरामी गवैया था। उसकी मा कामिनी ने भी गाना उसी से सीखा था।

कामिनी के गले में बड़ा दर्द है। उसी मिठास के लिये हरिदास ने बड़े ही शौक से कामिनी को गाना सिखाया था। पहले तो कामिनी ने संकोच से संगीत सीखने से इनकार किया था, पर हरिदास ने कहा था—अरी पगली, यह सब गोविन्द की देन है, देन! यह रूप, यह आवाज, इनका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। इन सब से उन्हीं की पूजा करनी चाहिये। उन्होंने अपने नाम-गान के लिये ही तुम्हें ऐसी मीठी आवाज दी है।

और जरा देर रुककर धीमे हँसकर उसने कहा था—सीख रखो कामिनी, मेरी जो जायदाद है, उसे तुम देख ही रही हो। अगर कुछ हो-हवा गया तो इसी पूँजी को भुनाकर तुम रोटी चला सकोगी।

इस बात की कठोर सत्यता को उस दिन किसी ने नहीं समझा। लेकिन; भावी की चाल से यह परिहास सच निकल आया। और, संगीत ही आज कामिनी का सहारा है।

मा-बाप दोनों की विरासत में कमलिनी को गाने का यह गुण मिला है। संगीत में मानों उसे एक स्वच्छन्द अधिकार है—किसी गीत को एक बार सुन भर लेने से उसकी धुन जैसे उसके गले में बैठ जाती है। अपनी मा से उसने मीठा गला पाया है। सरल बाँस की बाँसुरी-सा उसका तरुणकंठ सुडौल है, शहद की मिठास बिखेरनेवाला।

घर के काम-धन्धों में वह शाक-भाजी की क्यारियाँ और मालती-माधवी की लताएँ सींचती है। रंगीन माटी से घर-आँगन लीपती-पोतती है और हँस-हँसकर विभोर होती रहती है। उस चञ्चल लड़की के होठों से हँसी तो लगी ही रहती है!

कमलिनी को गीत सिखाने के लिये अधेड़ बाऊल रसिकदास आया करता है। वह उसे पुकारता है—राय-कमल!

कमलिनी ने यह सुना नहीं कि हँसते-हँसते बेहाल! कहती है—हाँ, कहिये बगुलाभगतजी!

रसिकदास के शरीर की बनावट कुछ अजीब लम्बी है। बगुले जैसी लम्बी गर्दन, वैसे ही लम्बे-लम्बे हाथ-पाँव।

उसे देखते ही कमलिनी को बेताब हँसी छूटती है। उसने उसका नाम रख छोड़ा है बगुलाभगतजी। अपने इस नाम से रसिकदास को क्रोध नहीं आता, वह हँसने लगता है।

कमलिनी कहती—मर गयी मैं तो बगुलाभगत के शौक देखकर! बासी कढ़ी में उबाल! ओह्हो, दाढ़ी के बाल भी गूँथे गये हैं, पके केशों में चूड़ा की कैसी बहार है। मैंने कहा, अजी

ओ बगुलाभगतजी, चूड़े पर कौआ का पंख खोंस लो न !—और वह फिर हँसनें लगती।

उसकी मा कामिनी उस पर बिगड़ उठती, रूखे शब्दों में उसे फटकारती हुई कहती—जा, जा, जहन्नुम में चली जा, मुँहझौंसी, भैंस जैसी लड़की और……

रसिक बीच ही में रोककर कहता—अरे नहीं, नहीं, झिड़को मत उसे, वह तो आनन्दमयी है—राय कमल !

सहारा पाकर कमलिनी कह बैठती—भला तुम्हीं बताओ बगुलाभगतजी ! वह मुँह में कपड़े डालकर हँसते-हँसते लोटपोट हो जाती।

बुहारते-बुहारते हाथ का झाड़ू तानकर मा कहती—फिर वही बात ! ठहर तो जरा ?

घेरे के उस पार से महतो का लड़का रञ्जन पुकारता–कमली ! और कमली भाग जाने के बहाने दौड़ना शुरू कर देती। कहती जाती—लगा, अपने ही मुँह पर झाड़ू लगा ! गीत सीखे मेरी बला, मैं चली बेर खाने को।

मारे गुस्से के गुर्राती हुई-सी मा कहती—दूर हो जा, एकबारगी निकल जा तू।

मा की डाँट-डपट की वह पर्वा ही नहीं करती, चल देती। मा पीछे लगी दरवाजे तक आती और जोर से पुकारकर कहती–कमली, कहा मान, लौट आ, लौट आ। इतनी बड़ी लड़की, भला लोग क्या कहेंगे, इसकी भी खबर है तुझे ! अरी ऐ कुल बोरन लड़की, कमली !

रसिकदास हँस पड़ता। उसकी हँसी से कामिनी सिर से पैर तक जल उठती। झमककर कह उठती—तुम भी क्या हँस देते हो महंथ! यह हँसने की बात है?

रसिक चुप रह जाता। वह अपनी दाढ़ी के लम्बे बालों को उमेठना शुरू करता। कामिनी घर की सफाई में लग जाती और बेटी को भला-बुरा सुनाती रहती। रसिकदास देखता कि गीत सीखनेवाली ही नौ-दो-ग्यारह हो गयी, सो वह चल देता। रास्ते में गुनगुनाता जाता—

> नील कमल कलिका मुसकायी, बैठा भँवरा काला।
> लोग लाख कुछ कहें, मगर उसको उसकी क्या ज्वाला?
> नहीं कमल को कूल चाहिये, बीच भँवर ही आला!

रञ्जन महेश्वर गोप का लड़का है। उमर में कमलिनी से वह तीन-चार साल बड़ा है। घरौंदे की जो उनकी गिरस्ती है, उसके हिसाब से वह कमलिनी का दुल्हा है—बन गये के लालाजी! पञ्चायती अखाड़े का जो विशाल बरगद है, उसके नीचे का स्थान यहाँ के बच्चों का पुस्तैनी क्रीड़ा-स्थल है। इस गाँव की जब से नींव पड़ी, तभी से उस पेड़ के साये में घरौंदों में बच्चों की खयाली दुनिया बसती आ रही है। बरगद की ऊँची उठी हुई जड़ें उन बच्चों की चौकियाँ बना करतीं। उसी चौकी पर धूल से लिपटा-लिपटाया रञ्जन आकर बैठ जाता और पक्के खेतिहर की तरह कह बैठता—बहू, जरा चिलम भर लाओ। पंखा लाकर झल दो जरा। उफ्, जिस सिद्दत की गर्मी है और फिर खेत का इतना सारा काम!

कमली महज नौ-दस साल की नादान, मगर ढीठ बहू के समान बोल उठती—आह रे, सिरीमान की बातों से जी जुड़ा गया! मेरे अपने ही जाने कितने काम अभी बाकी पड़े हैं और हुजूर के लिये चिलम चढ़ा दूँ और पंखा झलूँ! बड़े नवाब आये हैं कहाँ के। खुद भरकर पिओ।

रञ्जन बिगड़ कर कहता—जरा सोच ले, धूप में झुलसा किसान और आग में तपा फार, दोनों बराबर होते हैं। समझ-बूझ से काम ले नहीं तो गदराये बदन की मरम्मत करके छोड़ूँगा।

कमली खेलना बन्द कर देती। क्रोध से भरकर रञ्जन के आगे जा धमकती और अपनी पीठ उसकी ओर बढ़ा कर कहती—ले, कर मरम्मत, जरा तेरी भी मजाल देखूँ। ओह हो, मरम्मत कर छोड़ेंगे मेरी, बड़े वो आये हैं। मान-न-मान मैं तेरा मेहमान!

आसपास खेलनेवाले लड़के यह सब देख-सुनकर खिलखिला उठते। इस अपमान से खिसिया कर कर रञ्जन कमली का झोंटा पकड़ लेता और धमाधम कई मुक्के जमा बैठता। कमली जबर्दस्ती झोंटा छुड़ा लेती। कुछ बाल रञ्जन के हाथ में ही उखड़ कर रह जाते! कमली मारे गुस्से के पागल हो उठती। दोनों हाथों से वह रञ्जन की नाक-आँख में धूल झोंकने लगती और खीझ से रोती-हाँफती - कहती—पहले यह बता कि तू मुझे मारनेवाला कौन होता है? तीन में है कि तेरह में?

कादू घरौंदे के रिश्ते में ननद लगती है। वह आगे बढ़

आती और पुरखिन की तरह कहने लगती—भैया, यह तो तुम्हारी ज्यादती है।

कमली के लिये हमदर्दी दिखाते हुए दूसरे टोले का भोला कहने लगता—क्यों रे रञ्जन, खेल में तू हाथ क्यों छोड़ता है?

रञ्जन को यह दखल असह्य हो जाता। वह कहने लगता—हाथ नहीं छोड़ूँगा तो क्या खसम होकर औरत की बकझक सुनूँगा?

कमली गरज उठती—आहा, खसम की सूरत तो देखो; भात देने के भतार नहीं, मुक्का मारने के गोसाईं आये हैं। दूर जा, मैं तेरी बीबी नहीं बनती। आज से कुट्टी-कुट्टी—कुट्टी।

और इस तरह उस दिन का खेल वहीं बन्द हो जाता। दूसरे दिन फिर खेल की वही धूम, वही शोरोगुल। दूसरे दिन कमली का हाथ पहले भोला पकड़ लेता और कहता—आज हम और तुम भला!

कमली आँखों की कन्नी मारकर देख लेती कि दूसरी ओर रञ्जन खड़ा है। बिचले टोले की लड़की परी रञ्जन का हाथ अपने हाथ में लेकर कहती—आज हम-तुम, अच्छा?

परी कमली की हमउम्र ही है—मगर कमली से जाने कैसी तो एक दुश्मनी-सी है उसे। रञ्जन के बगल में ही परी का घर पड़ता है और रञ्जन के लिये ही कमली से उसकी कुछ-न-कुछ ठनती रहती है।

परी के प्रस्ताव पर रञ्जन जवाब देता—खैर, वही सही।

कमली भोला से कहती—भई, मैं तो विधवा हूँ। अकेली खेलूँगी।

दो-तीन दिन निकल जाते कि रञ्जन परी को जवाब दे देता—मैं अब ब्याह ही नहीं करने का।

भोला ताने दे बैठता—गोस्वामीजी ठहरे, भला!

कमली भोला से हाथ छुड़ाकर आगे बढ़ने लगती। भोला पूछता—कमली, फिर पिटने का मन है?

कमली उत्तर देती—अब मारे चाहे दुलारे, उसकी मर्जी। जब एक बार उसे दुल्हा मान बैठी मैं, तो उसकी गिरस्ती तो करनी ही है। लड़कियों का दूसरा ब्याह भी होता है कहीं! है या नहीं?—और वह रञ्जन के घरौंदे में जा रहती। पक्की धरती के समान जम बैठती और फरमायशें शुरू कर देती—राम बचाये इस गिरस्ती से। मेरी फूटी तकदीर, न नमक है, न तेल। भला ये सारी चीजें मैं कमा लाऊँगी?

रञ्जन मनमारे चुप रह जाता। कमली हँसकर भोला से कहने लगती—ठीक ही कहा तुमने भोला! महतोजी गुसाईं बन बैठे हैं, फिर वह हँस पड़ती और रञ्जन के कानों में कहती—आखिर कौन-से गुसाईं हो तुम, महज मुक्का मारने के, न?—फिर वही खिलखिल हँसी।

रञ्जन भी खिलखिला पड़ता। सब की नजर बचाकर दबी जबान में उसे कहता—सुनती हो, अब कभी नहीं मारूँगा तुम्हें। काली की कसम।

कमली हँसने लगती।

ये सारी बातें पुरानी पड़ गयीं। किन्तु; इन्हें यादकर कमली को हँसी आती है। रञ्जन जरा शर्मिंदा-सा हो जाता है। शर्मिंदा होने की बात भी है। अब वह नौजवान हो गया है। उसकी आँखों के कोनों में अब लाली दौड़ गयी है, जैसे जाड़े के बाद नयी कोपलें फूट आती हैं। कोमल छरहरे बदन पर मजबूत पेशियां उभरकर झलकने लगी हैं। और वह शरीर बातूनी लड़की कमली चौदह की हो गयी। शरीर में फूल तो अभी नहीं खिला, मगर उसकी चंचल गति के संकोच से, रंग के चिकनेपन से, चितवन की बाँकी अदा से, गालों की फीकी लालिमा से—सब कुछ से मँजराने की सूचना स्पष्ट हो उठी है। फिर भी उसकी चंचलता की हद नहीं है। उम्र का धरम उसके स्वभाव के आगे हार मान चुका है। हाँ, उसकी चंचलता जरा दबी-दबी-सी है।

यही कारण है कि कुल की मर्यादा का खयाल ताकपर धरकर वह रञ्जन के साथ बेर खाने को चल देती है; मा के झाड़ू की मार की पर्वा नहीं करके रसिकदास को वह बगुला भगत कहा ही करती है। चलती है, तो नृत्य चंचलस्रोत की तरह उसके अंगों में हिलोरें खेलने लगती हैं। बात करने के पहले ही आजाद झरने की कल-कल-सी हँसी ओठों के कूल तोड़कर निकल आती है।

उस दिन ऐसा हुआ कि रञ्जन पेड़ पर चढ़कर, बेर गिरा रहा था। कमलिनी नीचे घूम-घूम कर बेरों को बीनती जाती थी।

एक बेर का आधा चबाकर वह बोल उठी—आह्हा, इतनी मीठी है, इतनी मीठी कि···

रञ्जन टपककर दूसरे ही दम नीचे आ रहा। बोला—दे, उसका थोड़ा-सा मुझे भी दे।

कमली ने जल्दी-जल्दी जूठा बेर उसके मुँह में ठूँस दिया। असल में उस बेर में कीड़ा लग गया था। तालू पर जीभ से टकटका कर रञ्जन ने कहा—बाप!

कमली खिलखिलाकर हँसने लगी। पूछा—क्यों, कैसा रहा?

रञ्जन अभी भी तालू पर जीभ मारकर टक-टक कर रहा था। बोला—बड़ा मीठा है, बड़ा मीठा। तुम्हारा जूठा जो है।

ताली बजाकर कमली बोल उठी—जय जगदीश हरे! तो क्या मेरे मुँह में चीनी पड़ी है?

रञ्जन बोला—जरूर मेरी चीनी तो तू ही है।

कमली हँसते-हँसते लुढ़क-सी पड़ी। पूछा—और तुम्हारी जूठन मुझे कैसा लगता है, जानते हो?

कैसा लगता है?

बड़ा तीता—मिर्च जैसा। तब तो तू मेरा मिर्च हुआ?

रञ्जन जैसा मुरझा गया हो, बोला—जिसकी जैसी प्रीति!

मगर कमली ने उसकी उदासी का तनिक भी खयाल नहीं किया—एक के बाद दूसरा तीर वह चला बैठी—खैर। लेकिन; तुमने मेरा जूठा खा लिया न? तुम्हारी जात तो चली गयी।

रञ्जन चौकन्ना-सा हो गया। अपने चारों ओर एक बार

देखकर बोला—किसी ने देखा थोड़े ही है। फिर यकायक वह कहने लगा—जात गयी तो बला से। मैं भी वैष्णव बन जाऊँगा—तुझ से ब्याह कर लूँगा।

कमली बोली—तुझसे कौन तो ब्याह करती है! ऐसे निपट गँवार से!

रञ्जन ने झपटकर कमली का हाथ कसकर पकड़ लिया। बोला—अगर तू मुझसे शादी कर ले, तो मैं तो जात दूँ कमली।

कमली बोली—छोड़ो भी।

रञ्जन बोला—उँहूँ। पहले वायदा कर ले। बिना वायदा किये तो नहीं छोड़ूँगा।—उसने हाथ को और भी जोर से जकड़ लिया।

कातर होकर कमली चीखी—ओह्—हो, घाव है घाव!

अप्रतिम होकर रंजन ने हाथ छोड़ दिया। छोड़ना था कि कमली की हँसी से एकांत का सपना टूट गया। वह भाग चली। भागते-भागते कहती गयी—ग्वाले के बुद्धि भी कितनी होती है? भोथरे हल जितनी, और क्या!

रञ्जन ने कमली का पीछा नहीं किया। कमली जिस ओर होकर गयी, वह उसी तरफ टुकुर-टुकुर ताकता रह गया।

सहसा वह चौंक उठा—ऐं, यह उसका धौला बैल यहाँ कैसे आ निकला?

पीछे से बैल को किसी ने टिटकारी दी। आवाज उसके बाप महेश्वर की थी। फिर क्या था, रञ्जन वहाँ से हवा हो गया।

दो

रञ्जन की मा कमली को बहुत मानती थी। रञ्जन को कभी मिठाई देने जाती, तो उसका आधा तोड़कर कमली को वह जरूर देती। लेकिन ; उस दिन रञ्जन ने कमली के जूठे बेर जो खा लिये, तो वह कहने लगी—दईमारी राक्षसी है, मायाविनी। ये कंबख्त हैं ही बरह-जत्ते वैष्णव, इनकी ऐसी ही करतूतें हुआ करती हैं। मुँहजली के मुँह पर झाड़ू पीटूँ मैं।

संयोग से जूठे बेर खाते समय रञ्जन को खुद महेश्वर ने ही देख लिया था। धौला बैल वहाँ यों ही नहीं चला गया था। बेर के पेड़ के पास ही झाड़ियों में वह उसे चरा रहा था। जब इस घटना पर उसकी नजर पड़ी, तो हाथ के पैने को उसने बैल की पीठ पर दे मारा था। रञ्जन की सारी हरकतें अपनी आँखों देखकर भय से उसके प्राण काँप गये। पत्नी को सारा हाल सुनाये बिना उससे नहीं रहा गया। सब कुछ सुन कर गाल पर

हथेली रखकर ताज्जुब से बोल उठी—दैया रे दैया, जात और मान दोनों से हाथ धुलाया। हरामजादी कैसी बदमाश है रे बप्पा! चेहरे पर झाड़ू मार, झाड़ू। और, वह हरामजादा कहाँ भागा—उसे गोबर खिलाओ, गोबर।

महेश्वर ने पत्नी को रोका—चुप भी रह। शोर मचाकर सारे गाँव पर इसे जाहिर मत कर। कहीं जात-भाई के कानों खबर पड़ गयी कि छुड़ाये नहीं छोड़ेंगे—जात से बाहर कर देंगे।

उस घड़ी के लिए तो वह चुप लगा गयी। परन्तु; रञ्जन के आते ही अपना नथ हिलाकर बार-बार भँवें चमकाकर बोली—हाँ रे देहिजरू, तेरी ये कैसी हरकतें हैं?

उसी ढंग से रञ्जन ने कहा—मुझे खाने को दो, मैं कह देता हूँ। तुम्हारी गालियों से मेरा पेट नहीं भरने का। गाली सुनने को मैं नहीं आया।

गरजकर मा बोली—देती हूँ—राख देती हूँ खाने को। कमली के जूठे बेर खाकर पेट नहीं भरा रे बेहया, पतित कहीं का।

रञ्जन की सूर्ख आँखें मिट्टी की ओर झुक गयीं। महेश्वर वहीं कहीं ओट में था। वह सामने आ गया और दबे गले से गरजकर बोला—होते ही तू मर क्यों नहीं गया था। मुझे मुँह दिखाने काबिल नहीं रखा। जात गँवायी।

रञ्जन चुप ही रहा। उसकी चुप्पी से बाप का गुस्सा और

बढ़ गया। वह बोला—बुत क्या बन गया—मेरी बात का जवाब दे।

जरा देर रुककर वह फिर गरज उठा—फिर भी चुप्पी ही साधे है! तो खूब समझ ले, मैं भी ऐसा-वैसा नहीं हूँ। मैं तुम्हें त्याग दूँगा।—तुझे घर से निकाल बाहर करूँगा—मगर मैं अपनी जात नहीं दे सकता।

उसके बाद फिर उसने हुक्म देते हुए कहा—खबरदार, फिर कभी जो उधर गया। उन मा-धी की परिछाईं भी छुई कि ख़ैर नहीं कहे रखता हूँ—हाँ।

कहकर हनहनाते हुए महेश्वर चला गया। रञ्जन जमीन पर नजर गड़ाये चुपचाप वहीं बैठा रहा।

घूम-फिरकर मा उसके पास आयी। दिलासा देती हुई बोली—बस, इसी माघ में मैं तेरा ब्याह कराये देती हूँ, ऐसी बहू ढूँढ़ लाऊँगी कि देख लेना तू, यह कमली कहाँ लगती है उसे!

रञ्जन फिर भी चुप ही बैठा रहा। कमरे में से धान की मुरमुरी निकालती हुई मा अन्दर से ही बोली—कैसे तो कहते हैं, जहाँ मुर्गा बाँग नहीं देता, वहाँ सबेरा नहीं होता। सुन्दर लड़कियों का भी कोई अकाल है!

रञ्जन बोल उठा—वह नहीं हो सकता।

मा जो काम कर रही थी, वह रुक गया। अचरज से पूछा—यह नहीं क्या?

मैं ब्याह नहीं करूँगा।

अचरज और आशंका से मा ने पूछा—आखिर करेगा क्या तब ?

रञ्जन उठ बैठा। आँगन से बाहर होते-होते कह गया—मैं वैष्णव बनूँगा।

रञ्जन की मा की बोलती बन्द हो गयी। कुछ देर में आपे में आकर उसने महेश्वर को आवाज दी—अजी ओ, सुनते हो ?

रञ्जन वहाँ से सीधे रसकुञ्ज गया। यह नाम रसिकदास के अखाड़े का है, जिससे गाँव का हर आदमी भलीभाँति परिचित है। वहाँ गाँव के लड़कों को तम्बाकू, बड़े-बूढ़ों को गाँजा पीने को मिला करता। किसी को अजीबोगरीब शक्ल का हुक्का मिलता, तो किसी को साँप जैसा टेढ़ा-मेढ़ा नल। किसी-किसी को दो लत्तड़ों को मिलाकर ऐंठी हुई छड़ी मिलती, मानों दो साँप आपस में लिपट गये हों। ऐसी अनेक अजीब चीजों का ईजाद करके रसिक गाँववालों का मनोरंजन किया करता था।

उस समय नहाकर रसिक दास अपनी दाढ़ी सँवार रहा था। अँगुलियाँ डालकर गाँठें सुलझा रहा था कि रञ्जन ने आकर पुकारा—महंथ !

रसिक बोला—ओ राय कमल मनमोहन हो, आओ भैया, आओ।

रञ्जन को वह इसी नाम से पुकारा करता था। रञ्जन मन-ही-मन बहुत-बहुत बात कहने को सोचता आया था, मगर वहाँ

जाते ही सब गुड़-गोबर हो गया। जो याद भी रहीं, उन्हें भी लाज से कह नहीं सका।

रसिक दास ने पूछा—क्या तम्बाकू पिओगे? भोजन हो चुका?

रञ्जन को एक मौका मिल गया। वह बोला नहीं, यहीं खाऊँगा।

रसिक ने मज़ाक किया—अरे भैया, जात जो चली जायेगी।

रञ्जन बोल उठा—महंथ, मैं वैष्णव बनूँगा।

महंथ उसकी ओर देखकर जरा हँसा। फिर इस बात का रस लेते हुए गुनगुनाने लगा—

जाति धर्म कुल मान गँवा कर बनी चरण की दासी रे।

रञ्जन का चेहरा लाज से तमतमा उठा। झुँझला कर बोला—धत्तेरे की। यह तो हरिभजन में कपास ओटने की बात हो गई। आखिर तुम्हें हो क्या गया है महंथ?

हँसते-हँसते गर्दन हिलाकर महंथ ने कहा—रसिक को रसिकता सूझी है।

रञ्जन और भी खिजला गया। पूछा—तो जो कहना है, साफ कहो। मुझे भेख दे रहे हो या नहीं?

निर्विकार की नाईं उसने उत्तर दिया—अगर राय कमल कह दे तो जरूर दूँगा। रञ्जन नाराज हो गया। बोला सो क्यों? कमली क्या हाकिम है?

गर्दन हिलाकर हँसते हुए महंथ ने कहा—हूँ।

वह तुम्हें बगुलाभगत न कहती होती तो न जाने !—खीझ के मारे रञ्जन उठ खड़ा हुआ। रसिकदास तब भी उसी तरह हँसता रहा—कुछ बोला नहीं। रञ्जन ने कहा—खैर, मैं उसीके पास जाता हूँ।

रसिकदास गुनगुनाते हुए अपनी दाढ़ी उमेठने लगा।

कमली उस समय मालती, माधवी की छाया में बैठी बेरों को चुन रही थी। रञ्जन को उस तरह छका देने की बात याद करके बीच-बीच में हँसती जा रही थी। भोला उसके पास आकर बैठ गया और बोला—कमली !

अपनी आवाज को हिलोरे देकर जरूरत से ज्यादा दीघ करके उसने उत्तर दिया—क्या ?

भोला बोला—कुछ नहीं, यही कि आ गया मैं।

व्यंग्य से उसकी आवाज की नकल करके उसने कहा—अच्छा तो, चले भी जाओ तुम। इस व्यंग्य से भोला जैसे बहुत ही छोटा हो गया। अपने दोनों घुटने जोड़कर वह चुप बैठा रहा। कमली ने बेर चुनना छोड़ दिया। भोला जैसे बैठा था, वह भी ठीक उसी तरह बैठ गयी और ठठाकर हँसने लगी ! बोली—यह बन्दर की तरह चुकुमुकु क्या बैठ गया ? भोला के शर्म की हद न रही। वह भागने का बहाना ढूँढ़ने लगा। कमली बोली—जरा मेरे बेर तो चुन दे—मैं जरा बैठूँ।

भोला के जी में जी आया। वह झटपट बेर चुनने लगा।

वह अजीब ख्याली लड़की अचानक ही झूम-झूमकर कहने लगी—

एक जो हैं राजा खाते हैं खाजा
उनकी पटरानी बेहद सयानी
उनके सपूत जैसे हो भूत
मुँह में है पेड़ा, गाल पर—

और उसने थप्पड़ उठाया कि भोला ने झट से उसका हाथ पकड़ लिया। कमली की जलतरंग-सी मीठी हँसी गूंज उठी।

भोला बोला 'कमली!' उसकी आवाज़ काँप-सी रही थी।

हाथ छुड़ा लेने की कोशिश करती हुई कमली ने कहा—भले-भले कह रही हूँ भोला, हाथ छोड़ दे मेरा।

भोला ने कहा—नहीं छोड़ूँगा।

कमली ने दाहने हाथ में भर बकोटा पका बेर उठाया और भोला के मुँह पर दे मारा। बेर चेहरे पर लग कर छितरा गये और पके गूदे से उसका चेहरा चटचटा गया। उसका हाथ छोड़ कर भोला अपना मुँह पोंछने लगा। कमली अपनी स्वाभाविक हँसी हँसकर जमीन में लोट-सी पड़ने लगी।

ऐन वक्त पर बाहर से आवाज़ आयी—चीनी!

भोला दिल का जरा कमजोर आदमी है। रञ्जन से वह बेहद डरता है। उसकी आवाज पाते ही वह चौकन्ना हो उठा और झटपट खिसक पड़ने लगा। कमली के कौतुक का क्या कहना, उसने पुकारा—भोला, अरे ओ भोला, भाग मत। डर

काहे का है, सुना—कहते-कहते वह द्वार तक आ निकली। देखा, एक ओरको भोला भाग रहा है और दूसरी ओर हनहनाता हुआ चला जा रहा है रञ्जन।

कमली ने आवाज दी—भई मिर्च, अरे ओ मेरे मिर्च !

रञ्जन ने कोई उत्तर नहीं दिया। मुड़कर एक बार को देखा भी नहीं।

कमली को समझते देर नहीं लगी कि रञ्जन नाराज हो गया। भोला से उसे बतियाते देखकर ही उसका मुँह लटक जाता है, फिर आज तो वह उससे खिलखिला रही थी ! मगर इतना भी नहीं सह सकता है वह ! अरे, पकड़ कर भोला को दो तमाचे जड़ देता। सो नहीं, उलटे उसीसे बिगड़ कर चल दिया। वह चिल्ला कर बोली—अच्छा-अच्छा, मैं भी देखूँगी याद रहे ?

वह अन्दर की ओर मुड़ी। दोही डेग के बाद फिर दरवाजे तक बढ़कर बोली—मैं किसी की खरीदी हुई बाँदी नहीं हूँ !

उसने दूसरी तरफ उलट कर भोला को आवाज दी, किन्तु तबतक रास्ते की मोड़ की आड़ में वह ओझल हो चुका था। कमली अन्दर आ गयी और बेरों को चुनना शुरू किया। एक बेर को उठाकर वह आप ही आप बोल उठी—चल दिया, तो चल ही दिया। मेरी बला से। नाराज हुआ, तो अपने घर को, दो कौर ज्यादा खायगा मेरे ठेंगे से !

उसने हँसने की कोशिश की, लेकिन होठों पर हँसी के बदले

आँखों में आँसू छलक आये। अभिमान से वह जल्दी-जल्दी बेर के डण्ठल छुड़ाने लगी।

उसे समय की सुध-बुध नहीं रह गयी। कामिनी भीख माँग-मूंग कर लौटी, एक नजर चारों ओर डालकर बेटी को फटकारती हुई बोली—हाय दैव! अभी तक आग भी नहीं सुलगायी गयी है? पानी का घड़ा भी अलग ढनढना रहा है! बात क्या है? हाँ री कमली, तेरा यह रवैया कैसा?

बेवजह ही कमली बागी-सी बन गयी। तुनक कर बोली—मुझसे यह नहीं होगा, नहीं होगा। खाना नहीं दोगी, न सही। वह रो पड़ी। बोली—जब देखो, बस डाँट और डपट। इसका उसका, सबका गुस्सा मुझी पर उतारा जाता है। आखिर मैंने किसका क्या बिगाड़ा है?

कामिनी को ताज्जुब हुआ, ऐसा कुछ कहा ही क्या उसने? लेकिन; दुलारी बेटी का यह रोना उससे देखा नहीं गया। स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई बोली—मैंने कहा ही क्या बेटी! यही तो कहा, बूढ़ी हूँ, धूप में जल-तप कर अभी तो आयी हूँ, और अब पानी भरना, लकड़ी जुटाना—

कमली की आँखों में आँसू उसी तरह लहरा रहे थे और होठों पर हँसी खेल गयी। शायद वह शर्मिंदा भी हुई कुछ। उसने घड़े को उठाकर कमर पर रख लिया—पानी ले आऊँ, बस अभी-अभी आयी।

मा हँसने लगी। उसकी कमली को फूलों की भी चोट लगती है!

इधर कमली निकली और उधर से वहाँ महेश्वर गोप, रञ्जन का बाप दाखिल हुआ, मानों वह पास ही कहीं ऐसे मौके की ताक में था। उसने आते ही कामिनी के दोनों हाथ धरकर गिड़गिड़ाते हुए कहा—कामिनी, तुम्हारे भी बच्ची है। सन्तान का दर्द तुम जानती हो। मेरे एक ही लड़का है। मुझे मेरे बच्चे की भीख दो, तुम्हारा भला होगा।

कामिनी ने अपना हाथ छुड़ा लिया। अचरज से पूछा—मगर बात तो बताओ महतो! हुआ क्या है?

महतो ने शुरू से अखिर तक सब कह सुनाया और आँखें भरकर बोला—वह घर से रूठकर चल दिया है। अपनी मा से कहता गया है—मैं वैष्णव हो जाऊँगा।

कामिनी सब-कुछ सुनकर थोड़ी देर चुप ही रही। फिर बोली—बात यहाँ जा रहेगी, यह तो मैं सोच भी नहीं सकी महतो! मगर अब दोनों को जबरन दूर-दूर ही कर दिया जाय, तो मेरी बेटी ही क्या सुखी हो सकेगी? बोलो, मा होकर मैं ही अपनी बेटी के कलेजे पर बज्र गिरा दूँ?

महेश्वर ने कहा—मैं तुम्हें रुपये दूँगा, तुम्हारी बेटी के नाम कुछ जमीन लिख दूँगा।

कामिनी बोली—राम-राम, मेरी बेटी के क्या इज्जत-आबरू नहीं है?

महेश्वर बोला—हरे राम, मैं वैसा कहूँ, तो मेरी जीभ गल जाय। लेकिन; यह सोच देखो, दर्द तो मेरा भी वैसा ही है कामिनी। वही तो एक लड़का है।

कामिनी ने कुछ सोचा और कहा—अच्छा, महतो, जाओ। मैं कमली को लेकर कहीं और चली जाऊँगी, तुम अपने बेटे की बाग सम्हाल लेना।

महेश्वर कुछ उदास-सा होकर बोला—मगर मैंने तुम्हें गाँव छोड़ देने को तो नहीं कहा कामिनी।

कामिनी बोली—नहीं, सो तो नहीं कहा, मगर रञ्जन को मैं अपनी बेटी की आँखों के सामने नहीं रखूँगी महतो। मैं ठहरी भिखारिन, लेकिन मेरी बेटी मुझे कुछ कम प्यारी नहीं है। फिर अपनी जाति भी वैष्णव की, रास्ता ही हमारा घर ठहरा!

अचानक बेड़े के पास कुछ आवाज हुई। ऐसा लगा, मानों कोई चीज गिरी हो! कामिनी झपटकर बाहर जाती हुई बोली—कौन है, कमली?

और वह कमली ही थी। भीगे कपड़ों खड़ी-खड़ी काँप रही थी। कमर से पानी भरा घड़ा खिसक कर चूर-चूर होगया था।

महेश्वर दोषी की नाईं वहाँ से गायब हो गया। स्नेह से कामिनी ने कहा—घड़ा फूट गया? जाने दे। भीगे कपड़े बदल ले आकर।

कमली हँस पड़ी। बोली—नः, पहले पानी भर लाऊँ।

मा बेटी की ओर देखती ही रह गयी! यह वही कमली है, उसी की बेटी, मगर यह हँसी तो उस कमली जैसी नहीं। कमली को यह हँसी तो नहीं शोभती। कामिनी का कलेजा कैसा तो कर उठा।

कमली घाट जाने लगी थी, कामिनी ने रोक कर कहा—छोड़ दे। कमली बोली—बस, आयी मैं।

मा ने कहा—ठहर, मैं भी चलती हूँ।—और एक घड़ा लेकर वह बाहर निकल पड़ी। उसे लगा, पोखरे में अथाह पानी है और मेरी कमली का अभिमान उससे भी ज्यादा है।

रास्ते में कमली ने कहा—मा!

क्या बेटी?

वही अच्छा होगा मा। चलो, हम लोग और कहीं चले चलें।

कामिनी चौंक उठी कि कमली ने सारी ही बातें सुन ली। मगर वह कोई उत्तर नहीं दे पायी। उसकी आँखों के कोने में दबे आँसुओं की बाढ़ उमड़ी आ रही थी।

कमली बोली—नवद्वीप में रास का मेला लगता है। उसके पहले ही यहाँ से चल दो। सन्तान के खो जाने का दुःख बहुत बड़ा होता है, मा। यशोदा के कष्टों की सोचो जरा!

कामिनी अवाक् रह गयी। कमली को देखकर उसे लगा, अचानक ही वह जाने कितनी बड़ी बन बैठी। ऐसा लगा, मानों वह मा से नहीं, अपनी किसी सहेली से बतिया रही है। वह भी जैसे सब-कुछ भूल गयी। उसकी एक अन्तरङ्ग सहेली के समान ही इस समय पूछा—हाँ रे कमली, चले जाने से क्या तुझे बड़ी तकलीफ होगी?

हँसकर वह बोली—धत्त्!

मा ने पूछा—शर्मा मत बेटी।

उसने कहा—नहीं-नहीं।

पानी भरकर लौटते समय मा ने कहा—नवद्वीप में सलोना से सलोना चाँद ढूँढ़ कर तेरा ब्याह करूँगी !—इतनी देर में जैसे उसे प्रतिदान देने का मौका हाथ लग गया।

कमली ने घर में पानी भरा घड़ा उतार कर रखा और अपनी उसी मतवाली चाल से बाहर चली। मा ने पूछा—फिर कहाँ चली ?

—जरा बगुलाभगतजी से कह आऊँ कि नवद्वीप चलना है। वह अपने स्वाभाविक ढङ्ग से खिलखिला उठी।

कामिनी को उसकी हँसी से तृप्ति नहीं मिली। इधर बिटिया गयी और वह रो पड़ी, बार-बार आँखें पोंछने लगी।

हकीकत में कसूर कामिनी का ही था। उसे पहले ही होशियार होना था। रञ्जन से बेटी को मिलने की ऐसी आजादी देना ठीक नहीं था। इस अंजाम की बाबत वह सोच ही नहीं पायी थी, गोकि उसे सोचना चाहिये था। एक किशोर और एक किशोरी। इन दोनों की छूट का अंजाम गजब ही होता है। कब, कहाँ गाँठ पड़ जाय, नहीं कहा जा सकता और फिर वह गाँठ प्राण जाने पर भी नहीं छूटती।

बाहर से ही कमली कहती आयी—तुम्हीं कहो मा, मेरी बात पर विश्वास ही नहीं आता है।

कमली बगुलाभगत को लेकर हाजिर हो गयी।

कामिनी बोली—बैठो महंथ, बैठो। जरूरी बातें करनी हैं।

हाँ, कमली, जरा अपनी ननद के घर जा तो। थोड़ा नमक माँग ला।

सिर हिलाकर कमली बोली—घर में ही सेरों नमक पड़ा है।

—तू जा भी तो—उतने से ही काम नहीं चलेगा।

—अगर उतने से नहीं होगा, तो मनो नमक से तुम्हारा भरण नहीं होने का, मैं नहीं जाती।

—जा, रानी बिटिया, न हो तो जरा देर के लिये घूम ही फिर आ-जा। मा की आज्ञा मानने से पाप थोड़े ही लगता है?

कमली बोली—बात तो तुम मेरे रहते भी कर सकती थी मा, सुनकर तुम्हारी कमल मुरझाती नहीं। खैर, जाती हूँ।

वह ननद के घर चली। कमल के घरौंदे के रिश्ते की ननद कादू है—गोप की लड़की। अपने बाप की इकलौती है, इसीसे दुलार के मारे वह बरसाती मेढकी-सी बोलती ही रहनेवाली है। कहने में शायद भूल हो गयी, महज बोलती रहनेवाली कहने से कादू की बड़ाई होगी वह, असल में वह दो टूक सुना देनेवाली है, अप्रिय सत्य कहनेवाली। लोग कहा करते हैं, जन्म के बाद मा शायद उसके मुँह में शहद मलना भूल गयी थी। घर बैठे बहुत-से लोग उसको सरापते हैं। कमलिनी का उससे रिश्ता जोड़ना सफल हुआ है। कादू की शादी इसी उमर में हो गयी है। मा-बाप ने एक गरीब से उसका ब्याह कर दिया है और दामाद को अपने ही घर बसा लिया है।

रास्ते से ही कादू की आवाज सुनायी पड़ रही थी—कैसे तो

कहते हैं कि तेल जले तेली का और छाती फटे मशालची की ! मैं पान खाती हूँ, खाती हूँ तो अपने बाप के पैसे से खाती हूँ। मगर इसमें तुम्हारी आँखें क्यों फूटती हैं ?

कमलिनी समझ गयी कि यह झड़प पतिदेवता पर है। मा-बाप की गैरहाजिरी का मौका पाते ही पन्द्रह साल की कादू कमर में फेंटा बाँध कर पुरखिन-सी पति से जूझ पड़ती।

द्वार पर पाँव देते ही कमलिनी ने गाकर अपने आने की सूचना दी—

बोरी हुई नीम में मेरी ननदोइया की बोली,
बुझी हुई विषमें साँपिन की लपलप जीभ लचीली,
अरी ओ, ननदी मेरी !

कादू सब-कुछ छोड़-छाड़कर हँसने लगी। कमल ने पूछा—कुञ्ज में आ सकती हूं मैं ? इजाजत है ?

कादू ने कहा—जहन्नुम में जा, नखरे देखकर मरी जा रही हूँ मैं तो। आ जा। साथ-ही-साथ किसीको थोड़ी रुखाई के साथ कहा—तुम भी परले सिरे के बेशर्म हो। सरहज आयी है, बाहर जाओ न।

अन्दर कदम रखते हुए कमल ने कहा—आह आ, रहने भी दो बेचारे को, युगल जोड़ी के दर्शन कर आँखें सफल कर लूँ।

कादू ने कहा—क्यों नहीं, एक हाथ में फावड़ा और दूसरे में हँसिया लेकर देखने ही जोग सूरत होगी श्याम की। बैठ, बहना,

बैठ। यह दिन-रात की काहिंच-कचकच से जान जाने को है। अच्छा, मैं पान लगाऊँ। जर्दा भी लाऊँ क्या?

पान-तम्बाकू खाकर कमल ने कहा—मैं तो विदा माँगने आयी हूँ।

ऐं? रास में कहीं जाना है, क्यों?

नवद्वीप जा रही हूँ।

लौटेगी कब तक?

कमलिनी की आँखें भर आयीं। उसने उदास स्वर में कहा—अब कभी लौटकर नहीं आना है बहन।

कादू कहने लगी—यह तू कह क्या रही है भाभी, मेरी तो खाक भी समझ में नहीं आती।

दबी हुई रुलाई से कमल के दोनों ओठ काँप उठे, कोई बात नहीं कह पायी।

उसके दोनों हाथों को दबाकर कादू ने कहा—आखिर हुआ क्या है भाभी, मुझे भी नहीं बतायेगी?

कमलिनी ने धीरे-धीरे उसे सब-कुछ खोलकर कहा, और कहा ऐसा अंजाम तो कभी सोच न सकी थी बहन। मगर आज—

वह अपनी बात पूरी नहीं कर पायी। दोनों ओठ फिर काँप उठे। कादू इससे अभिभूत-सी हो गयी थी। वह चुप-चाप बैठी रही। जरा देर बाद फिर कमलिनी ने ही हँसकर कहा—और उसने कहा है कि मैं शादी नहीं करूँगा, जात दूँगा।

मगर ऐसा क्यों हो, घर का लड़का, मा-बाप का ही रहे। हमी लोग यहाँ से चल देते हैं।

कादू कहने लगी—तो महतो भी वैष्णव क्यों नहीं हो जाता है? आखिर वैष्णव कोई छोटी जात थोड़े ही है! कि वैष्णव आदमी नहीं हैं? मैं तो रञ्जन भैया के बापू से कहूँगी, जरूर कहूँगी। यह तो खूब रहा—वाह।

कुछ सोचकर कादू ने कहा—अच्छा, एक काम कर भौजी। होने दे रञ्जन को वैष्णव। फिर तो बेटे के प्रेम से—

कमलिनी ने बाधा दी—छिः।

कादू सिर झुकाये चुप बैठी रही। उसकी आँखें छलछला आयी थीं। कमल अचानक हँस पड़ी और कादू को ठेलकर कहा—दैया री दैया, यह तो नया रवैया देखती हूँ। खैर, जरा गीत सुन ले बहना, गीत! वह धीमे-धीमे गाने लगी—

जालिम ननदी के जुल्मों से हाय, हुई हैरान।
जाऊँ चाहे जहाँ वहीं वह उलझन नयी लगावे।
छूटे नहीं बेर के काँटे-सी फिर को उलझावे॥

दो ही कड़ी गा पायी थी कि कादू ने उसका हाथ धरकर—पूछा—तो भौजी, फिर कभी भी भेंट नहीं होगी?

हँसकर कमल ने कहा—भेंट क्यों नहीं होगी भला। यही कै डेग पर तो है नवद्वीप। कभी अपने उनके साथ चली जाना—क्यों?

कादू बोली—जरूर, साल में तीन बार जाऊँगी—रास पर,

होली पर, और झूले के दिनों। लेकिन बहना, आज रात मैं तेरे ही साथ सोऊँगी।

हँसकर कमल ने कहा--और तुम्हारे वो ?

कादू ने कहा मर, मर तू।

कमल ने उसकी ठोढ़ी पकड़ कर दुलारते हुए कहा--मरूँगी। मगर--"सखि, ना पुड़ायो राधार अंग, ना भासायो जले—"*

कादू उससे लिपट गयी और अपने हाथ से उसका मुँह दबाती हुई बोली—नहीं-नहीं, यह गीत मत गा तू, मत गा। अपने यहाँ लौटी, तो देखा, रसिक दास तब भी वहीं था। कमल को देखते ही वह एक कड़ी गुनगुनाने लगा :—

गौरचन्द्र गोरों के राजा के दर्शन को चलो सखि !

कमल ने हँसकर कहा—अब यह गीत नहीं रुचता है बगुला-भगत जी। रसिक भी हँसा। बोला—कमली की मा, तो यही ठीक रहा। जितनी जल्दी हो सके, चल ही दें हम लोग। आखिर हम लोग वैष्णव ठहरे, प्रभु के चरणों में रहना ही ठीक है। जाते-जाते उसने फिर गाना शुरू किया—

मथुरा में जो श्याम सुखी हो, उसे न कहना आने को।
इससे अगर मरण हो मेरा, सुख होगा, मर जाने दो॥

---

* ऐ सखि, मरने के बाद राधा के शरीर को न तो जलाना, न पानी में डालना।

तीन

नवद्वीप में कामिनी ने जमकर अड्डा गाड़ दिया। पति के जीते-जी ही वह चुपके-चुपके कुछ संजोती आ रही थी, उसी पूंजी से उसने घर-द्वार खरीदा और बस गयी। अखाड़े की टीमटाम में भी कोई कमी नहीं रही। वैष्णव महंथों को न्योते दिये जाने लगे, साधु-सन्तों की सेवा-शुश्रुषा शुरू हो गयी। सुबह शाम अखाड़े में भजन-कीर्तन की नियमित गोष्ठी जमने लगी।

बलाई दास और सुबलचन्द दोनों ही नौजवान हैं। सुबल देखने में खूबसूरत भी है। अंग-अंग में सुन्दरता की शान्त-सुन्दर ज्योति—देखते ही बनती है। बोलता है तो बातों में विनम्रता और शान्त स्नेह भरा होता है। उसे देखकर रसिक दास का जी नहीं भरता। उस वैरागी बाबाजी ने सुबल से मिताई भी जोड़ ली। वह उसे सुबल-सखा कहने लगा है।

कमली में कोई परिवर्तन नहीं दीखता। जैसे थी, वैसी ही है। गाँव छोड़कर नवद्वीप आते समय यकायक वह जितनी बड़ी हो उठी थी, आज भी उतनी ही बड़ी है, उससे बड़ी नहीं हुई।

फुर्सत के वक्त रसिक दास कमल से कहा करता—यह तो चाँदों का मेला ही तुमने लगा दिया कमल! अहा, हा, रूप देख कर आँखें जुड़ा जाती हैं। गौर चन्द्र के देश की बात ही कुछ और है!

कमलिनी ने कहा—तो यह कहो बाबाजी कि गंगातट के सौन्दर्य पर लुट गये तुम। खैर; अब एक अच्छी-सी वैष्णवी ढूँढ़ कर बसा लो।

इतना कहकर मुँह में कपड़ा डाल कमल हँसने लगी। इस मजाक से रस-बावला रसिक जरा शर्मिन्दा हो गया। वह शरमाया-सा हँसकर बोला—राधे कहो, राधे कहो, क्या जो तुम कहती हो कमल! राधा-रानी की जातिवाली कृष्ण-पूजा के फूल हैं, फूल।

हँसते हुए कमल ने कहा—देवता पर अर्पित की गयी माला गले में तो डाली ही जा सकती है। हाँ, पाँव न लगे।

रसिक ने कहा—कमल, मैं ठहरा बाऊल—रमता राम। माला हमारे गले नहीं, माथे लगती है। खैर; तुम अपनी कहो।

क्या जानना चाहते हो, कहो?

नवद्वीप कैसा लगा?—रसिक थोड़ा हँसा। उसे उम्मीद थी कि इस बात पर कमल के चेहरे पर लाली जरूर दौड़ जायगी।

कमलिनी ने सिर हिलाया और अंग-अंग से नकार का भाव दिखाते हुए कहा—ऐसा अच्छा ही क्या है महंथ ?

महंथ अचरज से उसके मुँह की ओर देखने लगा। कमलिनी ने फिर कहा—हाँ, गंगा मैया खूब भली लगी।

रसिक के ताज्जुब का ठिकाना न रहा। पूछा—एं, यह सोने-से गौरचन्द्र पर भी तुम्हारा जी नहीं जमा? हँसकर कमलिनी बोली—नहीं जमा, नहीं जमा बगुलाभगत जी। हाँ, अगर उसी रूप का कोई आदमी मिल पाता, तो उसके कदमों में बिक जाती, तब मन जमता।

रसिक से अब रहा नहीं गया, उसने तानेकशी की—अरे, कहती क्या हो कमल, रञ्जन को भुलाकर, एं ?

उसने हँसकर कहा—मुहर मिले, तो चाँदी की अठन्नी को कौन नहीं भुलाये, कहो ?

अठन्नी पर रुपया तो है। ऐसे आदमी का तो अकाल नहीं। क्यों नहीं रुपये पर अठन्नी को भुलाती हो ?

आखिर तुम्हें बगुला भगत यों ही थोड़े कहती हूँ मैं। तुम्हारी नजर तो पोठिया पर भी गड़ जाती है। दो अठन्नी का ही एक रुपया होता है और एक मुहर के लिये चालीसों अठन्नी चाहिये। लेकिन; अठन्नी एक मुहर की जितनी चाहे आये, उन सब को गला देने पर भी चाँदी पर सोने का रङ्ग नहीं चढ़ सकता। इस जरा-सा फर्क पर मेरा मनुआँ नहीं डोलता—इतनी लालच मुझे नहीं है।

कामिनी पास ही कहीं छिपकर शायद बेटी के मन की बात सुन रही थी। वह अपने को और ज्यादा नहीं जब्त कर सकी। सामने आकर बोली—सो जो भी हो, मगर रुपये-अठन्नी की तुम्हारी जैसी उलटी कद्र भी कोई नहीं करता। तुम्हारी ही ऐसी हरकत है—हाँ।

कोहबर में जैसे किसी नव वधू की कलई खुल जाय, कमलिनी उसी प्रकार हँस पड़ी। उसकी उस हँसी से मा के क्रोध पर जैसे घी के छींटे पड़ गये। वह बोल उठी—मर मुँहजली, इसमें हँसकर बेहाल होने का क्या है, बस हँसती ही जा रही है?

कमलिनी का हँसना बढ़ता ही गया। मुँह में अँचरे को भरकर हँसते-हँसते कहा—तू मर, छिपकर बेटी के मन की बात भाँप रही थी!

उसने खिलखिलाहट बन्द की और हल्के-हल्के हँसकर कहा—जब छिपकर सब सुना ही तुमने, तो सुन लो, मेरी भी सुन। नकली रुपयों का हार नकार कर अगर कोई खाँटी अठन्नियाँ की माला पहने, तो उसकी निन्दा काहे की? तू तो सठिया गयी है। ऐसे में मोल-भाव की बात नहीं होती, रुचि का सवाल है, रुचि का।

कामिनी अपनी बातूनी बेटी को देखती रह गयी। थोड़ी देर में जैसे उसे होश आया हो, बोली—तो तेरे मन में है क्या, वही बता।

कमलिनी बोली—कह तो दिया, और क्या बताऊँ?

कामिनी ने कहा—तो और कब तक काँटा होकर मेरे गले में तू चूभती रहेगी ? मुझे बता कि तू ब्याह आखिर करेगी क्यों नहीं ?

ब्याह नहीं करूँगी, मैंने ऐसा कब कहा ?

तो फिर सुबल से माला-चन्दन क्यों नहीं करती ?

हत् ! कैसी तो औरतानी बातचीत करता है, औरतों-से नाज-नखरे। राम-राम ! मुँह में कपड़ा भरकर वह हँसने लगी।

मा ने इसकी पर्वा ही नहीं की। बोली—तो जाने दो उसे; यह बलाईदास—कमल ने मुँह पिचकाकर कहा—दुर-दुर। तेरी रुचि की बलिहारी। गुठली-सी गोल-गोल लाल आँखें। उसे ब्याह करने से तो गले में रस्सी बाँधकर मरना कहीं बेहतर है।

गुस्से के मारे कामिनी वहाँ से चली गयी। तमाम दिन उसने बेटी से बात भी नहीं की। कमलिनी मा के गुस्से को ताड़ गयी। साँझ होते ही वह मा की गोद से सटकर बैठने गयी कि मा गज-डेढ़ गज छिटककर अलग जा रही। 'यह नन्हीं-नादान सी गोदी में सटकर क्या बैठना ?'

कमल कुछ देर चुप रही। फिर धीर स्वर से बोली—देह क्या गोविन्द की पूजा में नहीं लग सकती है मा ?

मा ने चौंककर बेटी को निहारा। जरा भी संकोच नहीं, ऐसी नजर से मा की ओर देखती हुई वह बोली—माला क्या किसी मनुष्य को ही पहनाना जरूरी है ?

ओसारे पर रसिक दास बैठा था। वहीं से वह बोल उठा—

हाँ कमल, माला मनुष्य को ही पहनाना पड़ता है। मनुष्य के माध्यम से ही गोविन्द की पूजा करनी पड़ती है। सुना नहीं है—सबार ऊपर मानुष सत्य, ताहार ऊपर नाईं ?

कमल ने खीझकर कहा—यह सरासर झूठ है, इसमें मनुष्य की चाल है। असल में ईश्वर की पूजा आदमी खुद लेना चाहता है।

मा ने कहा—इन बातों को जाने दे। सोचकर देख, आखिर तेरी मा अमृत पीकर तो आयी नहीं है और भिखमंगिन की दौलत भी क्या है कि तेरे लिये छोड़ जाऊँगी। जो मामूली पूँजी थी, वह भी चुक गयी। अब तू ही बता कि तेरे दिन कैसे कटेंगे ?

हँसकर कमल कहने लगी—दिन हरिनाम लेकर कट जायँगे। यह तो तू निपट गँवार जैसी बात कह गयी मा। तेरे दिन आखिर कैसे चलते रहे, वैसे ही मेरे दिन भी चले ही जायँगे। हरि-हरि करके पाँच दरवाजे घूमते ही एक पेट का ठिकाना हो जायगा।

मा ने कहा—बिटिया मेरी, तुझे दर-दर मारे फिरने की मुसीबतें नहीं मालूम हैं। देख, साँप से बचकर जाया जा सकता है, पाप से बचकर चलना मुश्किल है।

कमल बोली—लखींदर को तो कोहबर, बल्कि लोहे के बने तमाम से बन्द कोहबर में ही साँप ने काट खाया था, पथ में नहीं सो चाहे रात की बात कहो, चाहे घर की, पाप से बचना कठिन हो जाता है। मगर मुझे तू ये बातें न कहा कर। वह उठकर चली गयी।

कामिनी ने रसिक दास से पूछा—महंथ, कौन-सा उपाय करूँ मैं ? रसिक मन ही मन गीत गुनगुना रहा था, वह कुछ नहीं बोला।

सुनते हैं, मनुष्य की आशा का अन्त नहीं होता। वह संसार भर से चुन-चुनकर केवल आशाभरी घटनाओं का ही संग्रह करता है, अन्य घटनाओं को जानकर भूलना चाहता है, भूल भी जाता है। और इस प्रकार एक पर दूसरी घटना को सजा-सजाकर अपनी कल्पना में आशा की भीत खड़ी करता है। कामिनी की भी आशा एकबारगी नहीं चुक गयी।

सुबल से उलझन जरा गाढ़ी होती आ रही थी, जिसे देखकर कमल की मा के मन में एक उत्साहप्रद आशा बँध रही थी। यों सुबल की शिकायतें कमल चाहे जितनी भी करती हो, पर उसे देखकर वह खिल उठती है। अगवानी में वह हँसकर बोलती—सुबल सँवाती, सुनो।

रसिकदास कहता—भई सुबल-सखा, तुम्हें गोराई नहीं शोभती। रङ्ग तुम्हारा काला होता, तो क्या कहना।

सुबल को शर्म आती। वह सिर झुका लेता। चेहरे पर सुर्खी दौड़ जाती। बात का जवाब उसके बदले कमल दे देती। उस शरीर लड़की की जुबान पर लगाम ही नहीं। वह जरा तीखे वचन-वाण छोड़ती—पंगत में बैठकर खुद को जिस पकवान की लालच होती है, लोग उसे औरों के पत्तल पर देने की

सिफारिश किया करते हैं। असल में काला रङ्ग कहीं तुम्हारा होता, तो खासा दीखता। कमल बगल में खूब फबती।

अपनी बेरोक हँसी की लहरों से वह आप ही गूँज उठती। तरुणाई से खिले हुए अंग एक-एक कर स्पष्ट रूप से काँप उठते। ऐसा लगता कि प्रत्येक अंग थिरक-थिरक कर नाच रहा हो।

रसिक शर्मा उठता। कहता—राधे-राधे! हमलोग तो, बाऊल हैं कमल। हमें ब्रज का शुक ही जानो। प्रभु की लीला के गीत गाना ही हमारा काम है।

हँसकर कमल कह बैठती—तो हर्ज क्या, मैं शुक्र की सारिका ही होती! रसिक भाग खड़ा होता—। कहता—भई, मैदान में मैं पीठ दिखाता हूँ, अब पीछे से तीर मारना धर्म के खिलाफ है।

काम के बहाने मा भी सिसक पड़ती। सुबल बोल-बतिया कर, हँस-गाकर लौट जाता। रास्ते में किसी ने पीठ पीछे पुकार कर कहा—भैया सुबल, जरा सुन तो लो।

लौटकर सुबल ने देखा, रसिकदास खड़ा है। रसिक ने पास आकर पूछा—क्या जवाब दिया कमल ने?

अचरज से सुबल ने पूछा—जवाब क्या देगी? किस बात का जवाब?

खीझकर रसिक बोला—कमल बहुत ठीक कहती है कि गढ़ते वक्त भूल से ही विधाता ने तुम्हें मर्द बना दिया है। मैं पूछता हूँ, क्या यह कमल-माला तुम्हारे गले पड़ेगी? हाव-भाव से कुछ भाँपा भी है?

मारे शर्म के सुबल का चेहरा सुर्ख हो गया। सिर गाड़कर वह चुप हो रहता। रसिक नाराज-सा हुआ। कहा—तुम भी क्या आदमी हो! हें:।

सुबल की शर्मिन्दगी देख उस पर दया भी हो आयी। कुछ क्षण ठहरकर उसे दिलासा देते हुए रसिक ने फिर कहा—अरे भले मानस, वह कुछ खा तो नहीं जायगी तुम्हें। बाघ-भालू थोड़े ही है। एक दिन पूछ ही देखो न उससे, क्यों?

सुबल ने कहा—अच्छा, कल पूछूँगा।

रसिक जैसे खिल पड़ा हो, कहने लगा—मगर याद रहे, माला चन्दन के दिन तुम्हारी माला मैं अपने हाथों गूँथूँगा—हाँ?

हँसकर सुबल ने कहा—बहुत अच्छा।

दूसरे दिन उसी जगह रसिक उसकी बाट जोहता रहा। सुबल के आते ही बोला—क्यों, माला गूँथना शुरू कर दूँ?

सुबल चुप रह गया। रसिक कहने लगा—बोलते क्यों नही हो। क्या हुआ? सुबल बोला—पास के कमरे में उसकी मा थी—

रसिक ने कहा—यह तो अच्छी मुसीबत रही। अरे भैया, तुम्हारे लिये क्या वह बेचारी वनवासिनी बन जा? उसकी फिक्र मत करो, उसने खुद ही तुम्हें कहने को कहा है। वह तो रोज घड़ी-घड़ी बेटी से इसके लिये झगड़ती है कि तू सुबल से व्याह करेगी क्यों नही', देखो, कल इसका इसपार-उसपार कुछ जरूर करना पड़ेगा। आया खयाले शरीफ में?

गर्दन हिलाकर सुबल ने जताया कि वह समझ गया।

इत्तफाक से दूसरे दिन कामिनी घर नहीं थी। कमल अकेली बैठी क्या तो सोच रही थी। सुबल ने चारों ओर निगाह दौड़ायी—कोई कहीं नहीं। साहस बटोरकर उसने दिल्लगी की—आज कमल की पंखुड़ियाँ मुरझायी-सी क्यों हैं ?

कमल ने नजर उठायी। हल्के-हल्के हँसकर कहा—गोष्ठ की बेला जो बीत चली। इसी से सोच में पड़ गयी कि सखा-सुबल बछरू लेकर लौटा क्यों नहीं ? मैं कान्हा के पास जाऊँ कैसे ?

सुबल के मन में मोह जगा था और उस मोह को कल रसिकदास के प्रोत्साहन ने भरोसे की वारि से सींच दिया था। इसीलिये कमल की बातों में उसने अनुरूप अर्थ का ही संकेत पाया। आज तक जो मोह बंद कली की पंखुरियों के भीतर गंध-सा सोया पड़ा था, आज खिले फूल की महँक के समान वह मोह जैसे उसके सर्वाङ्ग में खिल पड़ा। सपने-भरी आँखों से मंत्रमुग्ध की नाईं कमल को देखते-देखते उसका हाथ पकड़ लेने के लिये उसने हाथ बढ़ाया। हाथ थरथरा रहे थे।

कमलनाल के समान अपने बदन को लहराती हुई वह छिटक कर हट गयी और बोली—राम-राम, सखा-सुबल की यह करतूत ! तुम्हारे मन में पाप !

सुबल के लिये यह घटना ऐसी आकस्मिक थी, जिसका उसे ख्वाब में भी खयाल न आया। रसिकदास की बातों पर उसे ऐतबार आ गया था। इसलिये उस शांत और शर्मीले नवयुवक

के अंग-प्रत्यंग एक असह्य लज्जा से मानों अवश हो उठे। चेहरा फक़ हो गया!

मगर उस चुलबुली लड़की का गजब स्वभाव। उसने खुद सुबल का हाथ पकड़ लिया और बोली—आओ, बैठो। मैं बिछाने को कुछ ले आऊँ—हाँ।

और कमलिनी कमरे में गयी कि सुबल भाग खड़ा हुआ। ग्लानि और धिक्कार का अन्त नहीं था। मगर फिर भी उसका पिंड नहीं छूटा। पीछे से कमलिनी ने आवाज दी—देखो, जाय सो मेरा माथा खाय।

लाचार सुबल को लौट आना पड़ा। उसने शिकायत की—बड़े चल दिये!

सुबल सिर झुकाये खड़ा रहा। कमलिनी ने उसके हाथ धरकर कहा—तुम सचमुच ही मेरे सुबल-सखा हुए, है न?

उसकी इस आवाज में अपनत्व और आत्मीयता थी।

सुबल की हिचक जाती रही। उसने निःसंकोच उसे देखकर कहा—अच्छा। मगर तुम्हारी आँखें क्यों छलक आयीं?

सीधी तौर से हँसकर वह बोली—मैं तो हँस रही हूँ।

उस दिन जब सुबल लौटा, तो उसने रसिकदास को जवाब दिया कि अब आप मुझे उसके बारे में न कहें।

रसिक अचरज से उसकी ओर देखता रह गया।

सुबल बोला—आदमी में उसका जी नहीं रमेगा महंथ।

कामिनी ने सब कुछ सुनकर पूछा—तो मैं करूँ क्या महंथ?

महंथ को बहुत सोच-विचारकर भी इसका कोई उत्तर नहीं मिला। उत्तर के बदले उसके जी में गीत गूँजकर निकला—

कांचन वरणी, के बटे से धनी, धीरे-धीरे चलि जाय।
हासिर ठमके, चपला चमके, नील साड़ी शोभे गाय॥

... ...

चराडीदास कहे, भेवो ना भेवो ना, ओहे श्याम गुणमणि।
तुमि से ताहार सरबस धन तोमारि से आछे धनी॥*

कामिनी को लेकिन नयी सान्त्वना खोज निकालनी पड़ती। वह सोचती, कमल अभी खिली नहीं है।

* सोने की रंगवाली धीरे-धीरे जो चली जा रही है, वह कौन है, जिसकी हँसी की दमक से बिजली कौंधती है और जिसके शरीर पर नीली साड़ी सोहती है। कवि चण्डीदास कहते हैं, ऐ श्याम, फिक्र न करो, उसके तुम्हीं सरबस हो, वह तुम्हारी ही प्रेयसी है।

चार

दिन जाने लगे, महीना निकला और महीनों में वर्ष बीत गया। कामिनी इस अर्से में ध्यान से बेटी को देखती रही थी। उसे लगा, कमल अब पूरी तरह खिल उठी है। वह युवती हो गयी है। इस पूर्णता की गम्भीरता से कमल की दबी हुई चपलता भारी-भरकम-सी हो गयी है। वह आप अपने पर गौर करती हुई अपनी चाल को कुछ मंथर करना चाहती है। लेकिन; चुलबुलेपन की आदत भुलाये नहीं भूलती। कमल की डण्ठल पर कमल-दल जैसी कभी-कभी वह झूम-झूम उठती। उसकी वह लज्जा भी अनोखी है! रसिकदास उसे देखकर खो-सा जाता है। कभी-कभी वह इस पर गुनगुनाने लगता है—

टलमल मृदु अंगों की सुषमा,

अवनी बहती जाये रे, अवनी बहती जाये।

भवें चढ़ाकर कमल ने पूछा—पूछती हूँ, उम्र क्या हुई महंथ?

रसिक ने हँसकर कहा—भौंरा उम्र का बन्धन नहीं मानता कमल! वह तो जिन्दगी-भर फूल के रूप की वन्दना गाता चलता है।

कमल खीझकर बोली—खैर, कृपा करो—चुप रहो।

मगर कौतुक से महंथ हँसता ही गया। उसकी हँसी आज मानों थमना ही नहीं चाहती।

कमल ने झुँझलाकर कहा—मैं कहती हूँ महंथ, मत हँसो।

उसकी हँसी रुकती नहीं। वह बोला—सो न हो तो मैं थम जाता हूँ, मगर तुम यह 'महंथ' कहना बन्द करो।

कमलिनी के लज्जारुण और खीझ से दमकते हुए होठों पर हँसी की रेखा झलक पड़ी। हँसी को दबाये कौतूहल से उसने पूछा—क्यों, तुम महंथ हो नहीं क्या?

अपनी गर्दन को जोर-जोर से हिलाकर महंथ बोला—नहीं।

आखिर हो क्या तुम?

मैं तो राय कमल का बगुलाभगत हूँ।

कमल को मुँह में कपड़ा ठूँसना पड़ा, फिर भी नवयुवती की बेरोक हँसी प्रवाह की कलकलध्वनि-सी बाहर फूट पड़ने लगी। और उसी की तरह उस अप्रतिहत बाऊल ने भी गीत का अधूरा पद पूरा कर दिया—

हास्य - तरंगों के हिलोर से
मार मार खा जाये रे—मार मार खा जाये।

कामिनी की दो कामनाएँ थीं। एक तो कमल को किसी

के साथ बाँध देना और दूसरी नवद्वीप की पवित्र भूमि में गौराङ्ग महाप्रभु के चरणों की छाया में गङ्गा की गोद में सदा के लिये सो जाना।

बहरहाल उसने बेटी के ब्याह की फिक्र छोड़ दी थी और सिर्फ गौराङ्ग देव के चरणों में जगह पाने की ही इच्छा किया करती थी। और, उसकी यह इच्छा अधूरी भी न रही, सहसा एक दिन वह चल बसी। नवद्वीप में ही उसने चोला छोड़ दिया। ऐसा कुछ हुआ भी नहीं—मामूली बुखार, वह भी महज चार दिन।

कामिनी मरने के पहले ही इसे समझ गयी थी। आखिरी दिन उसने महंथ से कहा—मरने का मुझे रत्तीभर भी गम नहीं है महंथ। गौराङ्ग प्रभु के चरणों की छाया, गङ्गा माता की गोद, यह मौत मेरे लिये सुख की मौत है। मगर—

रसिक ने उसे रोकते हुए कहा—ऊल-जलूल क्या सोचती हो तुम। ऐसा हुआ ही क्या है तुम्हें ?

कामिनी जरा हँसकर बोली—होने को तो सब कुछ हो गया है। महंथ, तुम्हें खबर नहीं, मैं मौत का बुलावा सुन पा रही हूँ। जानते हो, मुझे कैसा लग रहा है ? लगता है, मैं तुमलोगों से दूर, बहुत दूर चली जा रही हूँ। तुमलोग जो कह-सुन रहे हो, लगता है, मैं उन बातों को बड़ी दूर से सुन रही हूँ। मगर इस मौत का कोई रञ्जोगम मुझे नहीं है, केवल बिटिया की सोच है। मेरी कमली का क्या होगा महंथ ?

आँखों के पानी से रसिक की छाती भींग गयी। उसने कहा—उसकी तुम चिन्ता न करो। अगर ऐसा ही होगा, तो कमल का भार मुझ पर रहा।

कामिनी के सूखे होठों पर हँसी दिखायी दी। वह बोली—यह भरोसा तो मैं करती थी महंथ। है कहाँ कमल, मेरा कमल है कहाँ?

कमलिनी पास ही बैठी रो रही थी। वह मा की छाती में मुँह गाड़कर रुद्ध कण्ठ से पुकार उठी—मा!

अपना कमजोर हाथ अपनी बेटी के माथे पर रखकर हँसते ही हँसते वह बोली—रोती क्या है बेटी, मा भी किसी की सब दिन रहती है?

कमलिनी तो भी रोयी। बड़ी तकलीफ से अपने निश्चेष्ट हाथ का एक स्पर्श बेटी के बिखरे बालों पर देती हुई मा ने कहा—रो मत बेटी। अब अन्तिम विदाई के वक्त मुझे बेफिक्र जाने दे। सुन।

कमल ने कहा—कहो, क्या कहती हो।

कहती हूँ कि जो लत्ती पेड़ से लिपट नहीं जाती, उसके भाग्य में धूल में लोटते रहना ही बदा होता है। मवेशी उसे चरते रहते हैं—

कमल बोली—तुम्हें तकलीफ हो रही है मा?

नहीं-नहीं। सुन बेटी, आदमी की जबान का जहर बड़ा तीखा होता है, राधारानी का सोने-सा शरीर कलंक के विष से

जल गया था। न बेटा, तुझसे यह नहीं सहा जायगा। दे, मुझे वचन दे।

वह हाँफने लगी।

कमल ने कहा—क्यों मा, देवता के हाथों मुझे सौंप जाने में तुझे सन्तोष नहीं होगा?

कामिनी की आँखें सावन-भादों की धार बरसाने लगीं। बार-बार अपनी गर्दन हिलाकर वह बोली—नहीं, वह नहीं होगा। मुझे तू जबान देकर चिन्ता से छुटकारा दे बेटी!

अब की मा की ओर निहारकर वह बोली—मैं व्याह करूँगी मा।

कामिनी ने सन्तोष की साँस ली—आः।

इसके बाद उसने केवल दो बातें और कही थीं। एक बार कहा—हाँ, मा-बाप की सन्तान को उसकी गोद से मत छीन लेना कहीं!

हँसकर कमल बोली—नहीं-नहीं।

महंथ ने तब तक नाम जपना शुरू कर दिया था। जय राधे, श्री राधे—

कामिनी बोली—गोविन्द, गोविन्द। यही उसके अन्तिम शब्द थे।

पाँच

फूल झड़ जाते हैं, फिर फूलते हैं। काल के ताल-ताल पर लोरियों के समान भूलने के गीत गा-गाकर धरती माता लोगों के दुःख की याद को भुला दिया करती है। धीरे-धीरे कमलिनी भी बहुत हद तक मा के अभाव के शोक को भूल गयी। समय के साथ-साथ चलते हुए उसने आँखों के आँसू पोंछे और फिर हँसी, गीत गाये। बाऊल रसिकदास के मानों जान में जान आयी। वह भी उसके साथ हँसा। रसिकदास की यह हँसी वैसी ही थी, जैसी की पीड़ा से तड़पती हुई अपनी सन्तान को रोना भूलकर हँसते देख किसी मा के ओंठों पर दिखायी देती है।

रसिकदास भीख माँग लाता—कमल पकाती-चुकाती। ऐसे ही उनके दिन बीतने लगे। कोई तीन माह बाद एक दिन रसिक ने कहा—हाँ, कमल, एक बात कहनी थी।

उसकी आवाज में कैसी तो एक दुविधा थी। कमल को वह बड़ी अच्छी लगी। अपनी रसिकता से उसने बाऊल को और भी संकोच में डाल दिया। बोली—कहो।

रसिक बोला—मैं यह कह रहा था—

कमल बोली—हाँ, क्या कह रहे थे ?

रसिक और भी आगा-पीछा करते हुए बोला—यानी अब...

कमलिनी हँस पड़ी—'यानी अब' के मानी ? यानी अब क्या ? बगुला भगत के गले में काँटा अँटक गया क्या ?

उलझन में पड़कर रसिक ने योंही खखारी की। बोला—नहीं-नहीं·····

अपनी वही सहज हँसी हँसकर कमल बोली—नहीं तो गला क्यों साफ किया ?

रसिक ने इस बार खोलकर कह दिया—कह रहा था तुम्हारे मालाचन्दन की बात। मैं यानी मेरी·····

इस बात से सदा चंचला कमल हत-सी हो गयी। वह निर्निमेष नेत्रों से रसिकदास की ओर देखती रह गयी। फिर भी उसके होंठों पर हँसी की रेखा फूट उठी—बड़ी फीकी-सी लकीर। बोली—तुम्हारी ?

रसिक ने कहा—मैं तो बाऊल हूं—रमताराम। इसके सिवाय मेरे साथ रहने पर लोग बुरा-भला······

रसिक से और आगे कहा नहीं गया। कमल फिर जरा फीकी हँसी हँसकर बोली—आखिर गले के काँटे को निकालकर

फक नहीं सके ? खैर ; इस शाम को धीरज रखो, शाम को। उसने अपनी बात पूरी नहीं की। कमरे के अन्दर चली गयी। उस दिन दिनभर वह निकली ही नहीं।

रसिक भी तमाम दिन हाथ से सिर थामे नीची नजर किये बाहर बैठा रह गया। साँझ से कुछ पहले कमल बाहर निकली।

रसिक पूरब की तरफ मुँह किये बैठा था। नजर उठाकर उसने देखा। डूबते सूरज की लालिमा कमल के चेहरे पर थिरक रही थी ; मगर आज किसी भी तरह पदावली की कोई मिलती-जुलती कड़ी उसे याद नहीं आयी। दोषी की नाईं वह बोला—राय कमल !

अजीब-सी हँसी हँसकर कमल बोली—माला के लिये फूल जो चाहिये। अचरज से रसिक ने उसकी ओर ताका।

कमल ने कहा—मेरा माला-चन्दन आज ही होगा महंथ। माला चाहिये, धूमधाम चाहिये।

बड़ी खुशी से रसिक बोल उठा—तो सुबल को बुला लाऊँ ?

कमल ने रोककर कहा—अभी नहीं—बाद में बुलाना। पहले फूल ले आओ।

बच्चे की तरह खुशी से गद्‌गद्‌ होकर महंथ चला गया। थोड़ी देर के बाद भींगी छाती से लगाये कमल के कुछ फूल लेकर वह लौटा। बोला—कमल, मैं कमल के ही फूल ले आया हूँ।

शायद उसे और भी कुछ कहना था। लेकिन ; कमलिनी के रूप को देखकर वह बात वह बोल ही नहीं सका। कमल के

बाल बिखरे थे। रङ्गीन कोर की एक तशर की साड़ी वह पहने थी। नाक पर बारीक लकीर से खिंची रसकली मानों चन्द्र-कला-सी झाँककर हँस रही हो। भाल पर साँझ के अकेले तारे जैसी एक सफेद बेंदी। गले में तुलसी की माला, कलाई पर दो चमकती चूड़ियाँ। बदन पर और कहीं कोई गहना नहीं था, किन्तु यह सादगी ही एक सुन्दरता थी।

कमलिनी हँसी।

रसिक ने कहा—थोड़ी-सी त्रुटि रह गयी कमल। अगर नीली साड़ी होती तो क्या कहना!

कमल ने कहा—उसे कोहबर में पहनूँगी। ब्याह में नीला-काला शुभ नहीं माना जाता। खैर; तुम कपड़े बदल डालो। वह वहाँ रखा है।

रसिक ने देखा, वही शांतिपुरी धोती धरी है, जिसे उस दिन कमल ने बड़े चाव से खरीदा था। खुशी से उसे पहनकर वह बोला—यह तो मजदूरी से बहुत कीमती हो गयी! अब? अब इजाजत दो, सुबल को बुला लाऊँ।

चन्दन रगड़ना खत्म करके कमल ने कहा—अभी नहीं, बाद में। पहले दो मालायें पिरो ली जायँ। एक तुम गूँथो, एक मैं।

रसिक में आज खुशी समाती नहीं थी। झटपट वह माला गूँथने बैठ गया, बोला—बड़ा बढ़िया रहेगा—आते ही सुबल के गले में माला डाल देना। वह अजरज के मारे अवाक् हो जायगा।

कमल की माला लगभग तैयार हो गयी। उसने तकाजा किया—और कितनी देर है, मेरी तो बन गयी।

उसने हँसी करते हुए कहा—भई, जरा धीरज······और धागे में गिरह देते हुए कहा—लो, मेरी भी तैयार है!

कमलिनी ने अपने हाथ की माला रसिक के गले में डाल दी और कहा—गोविन्द गवाह रहे।

रसिक का चेहरा उड़ गया। कमल ने उसे प्रणाम किया और घुटने टेककर बैठती हुई बोली—अब अपनी माला मुझे पहना दो।

इतनी देर के बाद रसिक के मुँह से आवाज फूटी। वह तकलीफ से जैसे चीख उठा—तुमने यह क्या किया कमल?

कमल मीठी हँसी हँसकर बोली—क्या मुझे प्रसाद में माला नहीं दोगे?—इतना कहकर उसने रसिक के बुढ़ापे से झुर्रियाँ पड़े कपाल को चन्दन से सजा दिया।

रसिक की नजर धीरे-धीरे बदलती जा रही थी। एक राज-भरी निगाह से कमल को देखकर वह हँसा। फिर जो माला उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ी थी, उसे उठाकर कमल के गले में डाल दिया। उसके चिकने और चमकते हुए सुन्दर ललाट पर बाँके अलका तिलक की पंक्ति उसने अङ्कित कर दी। साथ ही वह गाने लगा—

हरि-पूजा के कमल-फूल को
रख लूँगा मैं उठा शीश पर।

कमल ने कौतुक से पूछा—क्या देरी है तुम्हें? कोहबर सवारना है जो!

रसिक ने उत्तर दिया—कोहबर मैं सजाऊँगा। हमलोगों की यह लीला उलटी होगी—तुम रुलाओगी मुझे, मैं रोऊँगा।

कमल ने कहा—प्रभु के मन्दिर में चलो—महंथ से मिल लें। जो रस्में जरूरी अदा करनी हैं, वे तो कर ली जायँ।

× × ×

रसिकदास ने कोहबर सजाया। कमल ने सजावट देखी—एक ओर ताजे फूल थे, दूसरी ओर बासी। कमल रसिकदास की ओर ताका। वह बोला—एक ओर तुम, दूसरी ओर मैं।

कमल ने कहा—अच्छा तो यह होता कि कोहबर को अङ्गारों से सजाते। उसकी आवाज काँप रही थी।

रसिकदास अप्रतिभ-सा हँसकर बोला—अच्छा, सूखे फूलों को फेंक देता हूँ। कमल ने उसमें बाधा पहुँचायी। सूखे फूलों पर आप बैठकर बोली—यह सेज मेरी रही। तुम्हारी सेज ताजे फूलोंवाली होगी। इसके बाद वह हँसने लगी।

अचानक एक अजाने तीखेपन से बूढ़े के पंजरे का भीतरी भाग कांपने लगा, जिस कम्पन से उसकी सारी देह जैसे हिलने लगी। वह दो-तीन डेग पीछे हट गया और काँपती हुई आवाज में बोला—नहीं कमल, रहने दो।

कमल पहले ही जैसे हँसी। बोली—ऐसा भी होता है कहीं ? यह तो रसम है—फिर अपने व्याह के लिये मेरी भी तो एक हँसी-खुशी है।

धीरे-धीरे पुरनिये बाऊल ने अपने को सम्हाला और खिले हुए कोमल फूलों की सेज पर बैठा। उसके बाद कमल के हाथ को अपने हाथ में लेकर वह बोला—कमल, आखिर में अधेली के बदले धेले की माला तुमने गले लगायी ? कहकर वह अजीब ढङ्ग से हँसा।

कमल हँसने लगी। कहा—सोने और ताँबे में बड़ा धोखा होता है। मगर गले में तो सोना ही समझकर डाला है। अगर ताँबा ही निकल आयगा, तोभी उसे मैं सोना समझ लूँगी। दोनों का फर्क भी तो महज मन की भूल है। यह चीज मेरी अकेले की रही—इसकी कदर मैं करूँगी। दूसरों से इसका दाम-दस्तूर करने को पैठ थोड़े ही जाना है !

आज घर के कोने-कोने में कमल ने घी का दीया जलाया था। दीये की रोशनी भी खासी हो रही थी। रसिक ने कमल के चेहरे को खुले प्रकाश में ला रखा। कमल हँसी।

रसिक का जैसे जी ही नहीं भर रहा हो, आशा नहीं मिट रही हो। कमल ने कहा—छोड़ो भी।

उसे कैसा तो डर लग गया। जर्जर बूढ़े बाऊल की धँसी ज्योतिहीन आँखों की वह जलती हुई एकाग्र नजर देखने ही योग्य थी !

कमल ने खिसक जाना चाहा। परन्तु; अचानक एक पागल-जैसे आवेश में रसिक ने कमल के पुष्पित शरीर को खींचकर अपनी छाती से लगा लिया। कमल ने छुड़ाने की कोशिश तो की, पर सफल नहीं हो सकी। उन दुबले हाथों में जैसे पागल हाथी की ताकत आ गयी थी! कङ्काल मानों फाँसी की रस्सी-जैसा सख्त और कठोर हो गया हो!

कमल का चेहरा उतर गया। वह भीत स्वर में मिन्नत करती हुई बोली—महंथ, महंथ!

मगर वह उन्मत्त बाऊल मानों अन्धा और बहरा हो गया था!

छः

दूसरे दिन जगकर कमल ने देखा, महंथ ओसारे में बैठा है। उसे इस बात की खाक भी खबर नहीं कि वह कब बिछौने से उठ आया है! लेकिन; उसका चेहरा देखकर वह सिहर-सी उठी। हाड़-मांस का वह पुतला जैसे पत्थर की मूर्ति बन गया है—अचल-मौन; पलक भूली हुई आँखों में खोयी-खोयी-सी दृष्टि! आँखों के नीचे गहरी काली लकीरें साफ उग आयी हैं। सूखी नदी के गिरे-धँसनेवाले तट में जैसे बीती हुई बाढ़ की कहानी लिखी हुई हो!

कमल ने सब-कुछ समझा। इस गुनाह की मुजरिम अकेले अपने को ही मानकर वह दुःख और ग्लानि से बड़ी छोटी-सी हो गयी। बार-बार दिलासा देने की सोचकर भी वह कुछ कह नहीं सकी। सारा सुबह वह उससे लुकती-छिपती रही।

रसिकदास ने ही पहले बात शुरू की। उसने पुकारा—कमल!

वह पुकार कमल के कानों में कैसी-कैसी लगी—धीमी-धीमी आवाज भी जैसे बर्फ-सी कठोर और ठण्ढी। वह नज़र झुकाकर सामने आकर खड़ी हो गयी।

उसकी ओर देखते हुए कातर होकर वह बोला—आखिर मैं मनुष्य हूँ कमल!

कमल ने जवाब दिया—हकीकत में पत्थर तो कोई भी नहीं है। मगर तुम आज पत्थर हो गये हो, यह मैं देख रही हूँ।

महंथ की वाणि से जैसे बदली बरस पड़ी। वह बोला—लगता है, अहल्या के समान जड़ ही शायद हो पड़ा हूँ।

कमल ने अँचरे से इस भाव से बूढ़े की आँखें पोंछ दीं, जाने वह कब की पुरानी घरनी हो। फिर वह बोली—माला तो फूलों की ही है महंथ, उससे भी यदि तुम्हारे गले फाँसी पड़ने की नौबत हो, तो तुम उसे तोड़ ही फेंको।

महंथ ने गर्दन हिलाकर धीरता से कहा—यह मुझसे नहीं होने का। उसने फिर गर्दन हिलायी—हर्गिज नहीं।

हँसकर कमल ने पूछा—तुम्हें मेरी फिक्र हो रही है, न? मेरी फिक्र मत करो। आखिर गोविन्द अकेले तुम्हारे थोड़े ही हैं! मुझे उन पर छोड़ देना भी क्या तुमसे नहीं हो सकेगा?

रसिक ने कहा—नहीं कमल, यह मुझसे नहीं होगा। तुम्हें देवता के चरणों भी नहीं सौंप सकूँगा, मनुष्य के हाथों भी नहीं। मेरा अन्दर-बाहर सब कुछ तुममय हो उठा है। तुम्हारे बिना मैं जी ही नहीं सकूँगा। जानती हो, कल मैंने भाग जाने की

कोशिश की थी, हार गया। कदम तो उठ गये, पर आँखों को तुम्हारी ओर से नहीं हटा सका।

कमल मलिन हँसी हँसकर बोली—लेकिन, लाज से मैं जो मरी जा रही हूँ महंथ! मेरे लिये तुम्हारा आज तक का भजन-पूजन सब भ्रष्ट हो गया।

पागल की तरह कमल के दोनों हाथ अपनी छाती पर रखकर रसिक बोला—हुआ, तो हुआ। होने दो। दुनिया में मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। कभी तुम मुझे न छोड़ देना, बस!

जोर से उसने कमल को अपनी छाती की ओर खींच लिया।

कमल बोली—छोड़ो-छोड़ो। उठो, नहा लो और गौरचन्द्र की पूजा कर आओ।

जानें क्यों, अचानक महंथ खुलकर रो पड़ा।

जनम के ब्रह्मचारी-वैरागी के जी की भूख आज तक उसी तरह जड़ हो रही थी, जैसे किसी सोये आदमी की भूख रहती है। आज उसके सामने भोजन परसकर उसे जगा जो दिया गया, सो वह भूख अजगर की तरह मुँह फैलाकर भीषण हो उठी। उस अजगर ने वैरागी के जीवनभर की साधना की कमाई को बेचारे हिरण के समान धर दबोचा। उसे पीसकर वह चबा जायगा। रसिक काँप उठा। वह जानें कैसा तो हो गया। उसके रस का प्रवाह सूखा-सा पड़ गया। सुआ-मैना का गीत अब जम नहीं पाता। गोष्ठ-विहार में सुबल-सुदाम का वह संवाद अब वह नहीं गाता। हँसता भी नहीं, रोता भी

नहीं। वह एक अजीब-सी दशा है! कभी कभी अकेले या भारी रात में आकाश की ओर आँखें फैलाकर हाथ जोड़े केवल 'गोविन्द! गोविन्द!' कहता।

धीरे-धीरे नर-नारी के इस जोड़े का जीवन कैसी तो एक निर्जीव बद्धता से असह्य हो उठा। कमल का भी मानों दम घुटने लगा। एक दिन वह बोल बैठी—यह तो कुछ अच्छा नहीं लगता है महंथ!

महंथ चौंक-सा उठा। वह फीके चेहरे और हत-सी आँखों से कमल को देखने लगा।

कमल ने कहा—घर तो अब जहर लगने लगा है। चलो, हम लोग कहीं और चलें।

बाहर जाने की चर्चा से रसिक जैसे जी उठा। बोला—हाँ तो जाया ही जाय कहीं, चलो। कहो, कहाँ जाया जाय?

वृन्दावन।

रसिक जैसे काँप उठा। कहा—नहीं-नहीं, कहीं और चलो। ब्रज के श्याम को मैं यह मुँह नहीं दिखाऊँगा।

जरा देर चुप रहकर वह बोला—तुम्हें पता है कमल, उस दिन से आज तक मैं गौरचन्द्र के मन्दिर में नहीं गया।

कमल को मर जाने का मन हो रहा था। उसे अपनी ओर ताकने में भी नफरत हो रही थी। उसने महंथ से ही पूछा—तो क्या मुझमें इतना पाप है महंथ?

रसिक से इसका कोई जवाब देते नहीं बना। वह दोषी

की नाईं सिर नीचा किये धरती को देखता रहा। आँखें पोंछ कर कमल बोली—खैर, कहीं भी जाने की जरूरत नहीं। चलो, हम लोग रास्ते-रास्ते ही घूमते रहें।

आः, रसिकदास जैसे जी उठा। रास्ते-रास्ते! वह उठ खड़ा हुआ। बोला—कमल, चलो, वही किया जाय—आज ही। उसे लगा—राह की धूल में ही जैसे कहीं मुक्ति पड़ी हो। घर या कुंज नहीं, आराम या अभिसार नहीं, केवल चलते रहना और चलते रहना।—चलो, आज ही निकल पड़ें।

कमल ने हँसकर कहा—उठ् कहा नहीं कि कंधेपर झोली लिये तैयार! घर-द्वार का भी कोई ठीक-ठिकाना करके जाना होगा कि नहीं?

बीच ही में टोककर रसिक बोला—रहने दो, घर-द्वार को यों ही पड़े रहने दो। जब घर बसाना ही नहीं है, तो बेच-खोंचकर संग-साथ ढोने से क्या लाभ? कहा है—

जो होता है वैरागी बाऊल

तज देना पड़ता है दोनों कूल

कमल ने फिर कोई एतराज नहीं किया। बोली—तुम्हारे जो जी में आये, वही करो महंथ!

हारे हुए कैदी वैरागी ने छुटकारे की आशा से माथे में नामावली को बाँधा, कंधे पर झोला लटकाया। आज फिर दाढ़ी के बालों को गूँथते हुए उसने अभिसार का गीत गाना शुरू कर दिया।

एक लम्बे अर्से के बाद घर छोड़कर रास्ते में खड़े होने पर अचानक उसे ऐसा लगा कि पिंजरे की मैना मानों आजाद हो गयी। उसी के समान वह आकाश की गहरी नीलिमा में उड़ चला है, गा रहा है। उसने पाँवों में नूपुर बाँध लिये थे, हाथ के इकतारे से बार-बार झंकार उठ रही थी और वह एक के बाद दूसरा गीत गाता ही चला जा रहा था। दोपहर को एक अच्छा-सा गाँव देखकर बाजार के पास ही रास्ते के किनारे पक्के घाट-वाले तालाब पर दोनों राहगीरों ने डेरा डाल दिया।

पेड़ के नीचे की जमीन को झाड़-पोंछकर रसिक ने साफ-सुथरा किया, लकड़ी बटोर लाया और तब कहा—घर की लच्छमी, अब तुम्हारी बारी।

नहा-धोकर कमल लौट आयी। बैठकर जरा हँसी, फिर रसोई के सरो-सामान देखकर बोली—झोली में नमक तो है ही नहीं गृह-स्वामी!

महंथ नमक लाने को चल दिया। जब ठोंगे में नमक लिये लौटा, तो देखा, कमल के चारों ओर खासी भीड़ लग गयी है।

कुतूहल से रसिक भीड़ के पीछे खड़ा हो गया। उसकी नजर कमल पर पड़ी। देखने लायक रूप! लम्बे बालों के छोर पर एक गाँठ देकर ढंग से उसे सिर पर रख दिया है। आग की आँच से खूबसूरत मुखड़ा सिन्दूर जैसा गहरा लाल हो उठा है। नाक पर रसकली, कपाल में तिलक सोहता है। वह देखनेवालों

बोला—बहुत खूब, कमल, आज तुम मान ही करो। आज मैं घर-घर मान-भंजन के गीत गाता फिरूँगा।

कमल हँसी। बोली—गीत तो तुम गा लोगे महंथ, मगर मान तोड़ना तुम्हारे बस का नहीं। बाऊल वैरागी के लिये स्त्री का साथ पाप है, इस शर्म को तुम भूल नहीं सकते हो।

बलपूर्वक वैरागी बोला—बखूबी भूल सकूँगा, खुशी से भूल सकूँगा। पाप और लज्जा घर की चीजें थीं, उन्हें वहीं फेंक आया हूँ। तभी तो आज तुम्हें कमल कह रहा हूँ, श्याम की चढ़ौती की माला!

वैरागी-वैरागिन दोनों राह चलते। घर-घर हाथ फैलाते। इस प्रकार कितनी राह और जानें कितनी ही बस्तियाँ पीछे छूटती जातीं। गङ्गा बहुत पीछे रह गयी। राह अब अजय नदी के किनारे-किनारे चली।

चलते-चलते दो मास बीते। एक दिन अचानक रुककर कमल ने कहा—महंथ, हम यह कहाँ निकल आये?

रसिक ने चारों ओर निगाह दौड़ायी और सिर्फ 'कमल!' कहा।

माया के खिंचाव से या राह के फेर से, कौन जाने ये दोनों राही यह कहाँ आ निकले?

वही तो, वहाँ अजय का वह किनारा। किनारे-किनारे दूर तक फैला हुआ सरपत का घना जंगल। वह, वह रहा वनवारी-लाल का रासमञ्च!

वनवारीलाल यहाँ के पुराने जमींदार द्वारा स्थापित गोविन्द की प्रतिमा हैं। इनके सेवायत इलाके भर में अजय के किनारे-किनारे उनकी लीला के क्षेत्र—रासमञ्च, झूलनमञ्च—तैयार कर गये हैं। और वह पास ही तो उनका अपना गाँव है—वह, वहाँ!

दोनों ने एक लम्बी साँस ली।

कमल बोली—लौट चलो महंथ।

रसिक ने गर्दन हिलाकर कहा—नहीं-नहीं कमल। जब देवी ने अपनी ओर खींचा है, गोविन्द यहाँ ले आये हैं, तो यहाँ तीन रात रहे बिना नहीं लौट सकता।

वे रसकुञ्ज के द्वार पर आकर रुके। द्वार कहूं तो भूल होगी, असल में रसकुञ्ज के खँडहर के सामने आकर रुके। उसके लिये मन के जाने किस कोने में ममता छिपी बैठी थी, सहसा आँखों की राह प्रकट हो पड़ी। आँखों में आँसू आ गये।

कमल के अखाड़े की भी वही हालत हो गयी थी। किन्तु; जुड़वें लत्तड़ों का कुंज ज्यों-का-त्यों था, चारों ओर का घेरा भी पहले जैसा था। कुंज की छाया में रङ्गीन मिट्टी से पुते अँगने में अब हरी घास की भीड़ जम गयी थी। दोनों राही उसी छाया में बैठ गये। एक गहरी ममता का अकथ मोह उनके मन और चेतना पर छा गया। दोनों चुपचुप बैठे अपने इन परिचित स्थानों से मानों नये सिरे से परिचय करने लगे।

कुछ क्षण के बाद कमल ने कहा—बड़ी ममता हो रही है

महंथ। इसे छोड़ जाने की कल्पना भी कष्ट पहुँचाती है। मन रहन ही चाहता है।

तब तक रसिक ने गीत शुरू कर दिया—

बहुत दिनों पर प्रीतम आये,
भेंट न होती मर जाती जो
अब तक कहाँ रहे तुम छाये !

कमल ने भी साथ दिया। उसकी आँखें भर आयीं। गीत समाप्त होने पर महंथ ने कहा—अब यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगा कमल ! यहाँ की हवा, यहाँ की मिट्टी, मुझे भी जैसे जकड़ने लगी है।

कमल चुपचाप आम के पेड़ की तरफ देख रही थी।

रसिक ने कहा—मुझे किन्तु रसकुंज में रहने देने की इजाजत देनी होगी।

रूखी हँसी हँसकर कमल ने कहा—वही सही, रसकुंज में ही रहना–रसकुंज में ही। घबड़ाने की वजह नहीं, ध्यान तुम्हारा नहीं टूटेगा।

महंथ ने कहा—मैं आऊँगा भई, मैं आऊँगा। सावन की घटाओं से घिरी रातों में तुम्हारे झूले को झुला जाया करूँगा। रास की रात में फूलों के गहने लिये तुम्हारे दरबार में जरूर हाजिरी बजाऊँगा और फागुन की पूनो को कुंकुम लिये पहुँचूँगा।

तीखे व्यंग्य से कमल ने कहा—लेकिन; एक लीला तो रही गयी गुसाईं—गोबर्धन धारण !

इससे रसिक अप्रतिभ नहीं हुआ। बोला—तुमसे भूल हुई

कमल, भूल हुई। तुम्हारे दरबार में मुझे उस रूप में तो आना भी नहीं है। मैं आऊँगा।

वृन्दे, ललिता होकर, तुम्हारा मालाकार, द्वार का पहरेदार बनकर। पिछले कई दिनों की बात को भूल जाओ, खो दो, पानी की लकीर के समान पोंछ डालो।

कमल उसकी ओर निहारती हुई बोली—माला क्या तुम्हारे गले फाँसी बन रही है महंथ कि उसे तोड़ ही फेंकना पड़ेगा ?

जाने भी दो, फिजूल की बकझक में समय की बर्बादी होती है। मेरी बैरागिन, जरा पेट की भी तो फिक्र करो। चलो—घूमकर दो-चार घर से माँग लायें। महंथ ने इकतारे पर अँगुली चलायी।

म्लान हँसी हँसकर कमल ने कहा—चलो। लेकिन; साग डालकर क्या मछली छिपायी जा सकती है महंथ ?

रास्ते में चलते-चलते कमल ने पूछा—महंथ, और एक दिन मैंने तुमसे यही बात पूछी थी—आज फिर पूछती हूं, मुझमें क्या इतना पाप है ?

महंथ राह चल रहा था, साथ ही उसके हाथ का इकतारा बजता जा रहा था और पाँव के नूपुर भी ताल-ताल पर बोल रहे थे। कमल की बात सुनकर इकतारा मौन हो गया, नूपुर का ताल भङ्ग हो गया। महंथ को इसका कोई उत्तर ढूँढ़े नहीं मिला।

यकायक कमल रुक गयी।

रसिकदास ने पूछा—रुक क्यों गयी ?

कमल ने अपने ही शरीर पर नजर डाली। उसका गोरा रंग धूप में खरे सोने-सा दमक रहा था। कहाँ, निश्वास में तो कहीं कालिमा नहीं है—किसी तरह की बू नहीं आती ? फिर ? उसका हृदय कह उठा—कहाँ है पाप ? कैसा पाप ? मगर उसने महंथ से कुछ नहीं पूछा।

महंथ बोला—चलो, पहले कादू के यहाँ चलें।

कमल ने कहा—नहीं-नहीं। वह नाछोड़ बन्दा है। छोड़ेगी ही नहीं। पहले सारी बस्ती घूम लें, फिर उसके यहाँ चलेंगे।

एक गृही के दरवाजे पहुँचकर कमल ने ही कहा—महंथ, बजाओ इकतारा—सुर छेड़ो।

दोनों द्वार-द्वार गीत गाकर माँगने लगे। लोग कुशल-क्षेम पूछने लगे। महंथ गीत गाकर ही उन्हें उत्तर देने लगा—

गोविन्द रक्खें सुखी घर तुम्हारा,
तुम्हारे कुशल से कुशल है हमारा।

औरतें लेकिन इतने से ही जान छोड़नेवाली न थीं। वें भली तरह पूछताछ के बाद ही पिण्ड छोड़तीं। कमल को देख-कर मुस्कुराती हुई कहतीं—हाँ री कमली, भली लक्ष्मी-सी हो गयी है तू—ऐं !

अपने-आप देखकर उन्हें सन्तोष नहीं होता। घर में और कोई होती, तो उसे बुलाकर दिखाती—देख जा, देख जा मौसी। हमलोगों की वही कमली आयी है, देख।

मौसी आकर देखती। कहती—नवद्वीप के पानी में असर है।

कमली के चेहरे पर मुस्कान थिरक जाती—उत्तर रसिकदास ही देता। कहता—वह गौर प्रभु का देश है—सुन्दरता का सरोवर। कौतुकमयी किशोरियाँ चिकोटी काटने से न चूकतीं। ठिठोली कर बैठतीं—बेशक, तुम्हारे चेहरे की चमक भी देखते ही बनती है।

और कहकर मुँह में कपड़े डालकर हँसतीं।

मजाक से रसिकदास मद्धिम नहीं होता। हँसकर कहता—काल के आगे किसकी चली है! वरना सूखी डालों पर भी फूल खिलते!

रसिक के आगे जब उनकी एक नहीं चलती, तो वे फिर कमल से ही उलझ पड़तीं। पूछतीं—अरी कमली, अब तक कुमारी ही रह गयी है रे? तेरा वैरागी कहाँ है?

शर्म के मारे रसिक को चुप हो जाना पड़ता। कमल ही मुस्कुराती हुई कहती—मेरा महंथ यही तो है।

सबके अचरज का अन्त नहीं रह जाता। मगर अचरज के उस आवेश को मिटाने के लिये सब जोरों से हँस पड़तीं। बाज-बाज कह उठतीं—काल प्रबल ही हुआ तो क्या, प्रभु के नाम की महिमा नहीं जाने की। देखती हूँ, सूखी डाल पर भी फूल खिले हैं।

महंथ बेचारा बिना वजह ही ऊब उठता। कहता—मैया, भीख दो, और भी दस दरवाजों की खाक छाननी है।

रञ्जन के घर तक पहुँचकर रसिक ने कहा—कमल, आज इतना ही रहे। दो पेट के लिये बहुत हो गया है।

कमल बोली—वाह, ऐसा भी होता है कहीं। मुझे अपने 'मिर्च' के घर जाना ही पड़ेगा, नहीं तो वह कहेगा क्या ?

उसे रत्तीभर भी हिचक नहीं हुई। महंथ अचरज से उसकी ओर देखने लगा। चेहरा आनन्द से चमक रहा था—नजर आगे की ओर थी। घर-घर माँग-जाँचकर जब वह रञ्जन के घर तक आयी, तो ठिठककर बोली—महंथ, यह क्या देख रही हूँ मैं ?

रञ्जन का घर एक खँडहर में बदल गया था।

महंथ ने पुकारकर कहा—राय कमल !

वह मुड़ी। हँसकर बोली—कहो।

महंथ बोला—चलो, लौट चलें।

कमल बोली—चलो।

रास्ते पर ही एक स्त्री खड़ी थी। उसके साथ चार-पाँच बच्चे-बच्चियाँ थीं। वह फुँफकार-सी उठी—तेरा सर खा लूँगी मैं—नाक रगड़ा के छोडूँगी। भला इतनी ऐंठ काहे की ? मेरी हेठी करायी, क्यों ? आखिर क्यों, जरा सुनूं तो मैं ?

कमल बोली—कादू, बहना !

वह फिर गुर्रा उठी—कादू क्यों कहती है, ननद कह, ननद !

इसके बाद उसने स्नेहसने शब्दों में शिकायत की—भला इस भरी दुपहरिया की कड़ी धूप में यह धर्मदण्ड काहे को सह रही हो ? क्या मैं इस लायक भी नहीं कि एक दिन तुझे खिलाऊँ ? आ जरा पानी-वानी पी ले। आओ महंथ। न-न, तुम तो अब शायद भैया हो गये !—और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

सात

कादू ने जमकर जलपान का इन्तजाम किया। खुद ओसारे में बैठकर पंखा झलने लगी। ओंठ दबाकर हँसती हुई बोली—आखिर में घुटने भर पानी में डूब मरी बहना, उस बगुलाभगत, बूढ़े पखेरू के ही गले माला डाल दी?

कमल ने सिर ऊपर को उठाया। उसके दोनों ओंठ थरथरा रहे थे।

अचरज से कादू ने कहा—भौजी?

और मेरे मिर्च, मिर्च का घर-बार!—उसे जोरों से रुलाई छूट रही थी। बात खत्म न कर सकी। दोनों आँखों के कोनों से आँसू की बाढ़ बह निकली।

नफरत से नाक सिँकोड़कर कादू ने कहा—हरे राम कहो, उसका नाम भी मेरे आगे न लो। छिः!

कमल कुछ समझ नहीं सकी। कादू ने तबतक कहा—तुझे

परी की याद है? तेरे यहाँ से जाने के कुछ ही दिन बाद वह खसम को खा बैठी। और, उसी परी को लेकर रञ्जन निकल भागा। रञ्जन के मा-बाप शर्म और नफरत से काशी चल दिये। वहीं दोनों ने आखिरी सांस ली।

कमल जमीन ताक रही थी; उसे लगा, धरती घूमने लगी है। हृदय के अन्दर आँधी-सी उठ रही थी—हे भगवन्, इस वंचना के बाद वह जियेगी कैसे?

कादू कहने लगी—उसकी चिन्ताकर दुःख मत कर भौजी। इसे अपनी तकदीर की खूबी ही समझ कि उसने तुझे भुला दिया। मा-बाप के मरने के बाद वह अपनी जमीन-जायदाद बेचने के लिये एक बार यहाँ आया था। जानती हो, तब क्या कहा था उसने मुझे?

कमल जिस तरह मिट्टी की ओर नजर किये बैठी थी, बैठी रही। कादू बोली—मैंने देखा कि रञ्जन ने वैरागी का बाना बनाया है। उसे बुलाकर मैंने पूछा—हाँ भैया, जब तुम्हें वैष्णव बनना ही था, तो बेचारी कमल ने क्या बिगाड़ा था कि उसे यहाँ से चले जाने को मजबूर कर दिया? और, तुम उसे भूल ही किस तरह बैठे? इसपर उसने जवाब दिया कि कादू, तुम्हें पता नहीं है, परी बड़ी भली लड़की है! बचपन के घरौंदे के किस्से क्या दुहाराती हो? उमर के साथ वह सब कुछ भूल जाना पड़ता है।......अरे कमल, यह क्या, तुमने कुछ भी तो नहीं खाया—यह क्या। कम-से-कम एक पेड़ा तो खा ले—

कमल ने हँसने की कोशिश की। बोली—बहिन, धँस नहीं रहा है—ननद की दी हुई मिठाई रुचती नहीं। कड़वी जरूर नहीं है, जहर भी नहीं है, मगर ननद की मिठाई रुचती है कहीं! तूने जो खबर दी, पेट उसीसे भर गया। उसके बाद उसे भरोसा देते हुए कहा—आज अब रहने दो। भागी थोड़े ही जा रही हूँ। बाद में जितना चाहे खिलाना।

कादू को कमल के जी में उठनेवाले तूफान का पता चल गया। उसने जिद नहीं की। कमल उठ खड़ी हुई और भीख की झोली उसके आगे फैला दी। असल में इस मजाक के बहाने वह अपने को जब्त करने की कोशिश कर रही थी। झोली फैलाकर बोली—ननद, भीख दो!

कादू की आँखों में लेकिन पानी भर आया। उसने दुःखी होकर ही कहा—आखिरी भीख तो मैंने दे ही दी भौजी, ननद का कर्त्तव्य मैं कर चुकी!

कमल हँस उठी, लेकिन वह हँसी इतनी बेकार, इतनी बनावटी थी कि खुद उसकी ही आँखों में पानी भर आया।

कादू ने कहा—तू मुझसे छिपा रही है भौजी। लगता है, तू मुझे परायी समझती है। क्यों!

कमल ने उसके हाथ पकड़ लिये और केवल एक शब्द कहा—कादू! कादू के ओंठों पर एक फीकी और करुणाभरी हँसी अजीब ढंग से फूट उठी। उसने कहा—अगर अपना समझती होती, तो अपनी तकलीफ को मुझ से यों नहीं छिपाती!

अफसोस कि तू अभी संतान की मा नहीं हो पायी, वरना समझती कि जहाँ सच्ची मुहब्बत है, वहाँ कोई छिपाव नहीं। जिस बच्चे के जबान नहीं होती, वह रोता है। और उस रुलाई से ही मा समझ जाती है कि बच्चे की कौन-सी रुलाई भूख की है, कौन-सी रोग की, और कौन-सी खीझ की। तेरी आँखों से आँसू नहीं बहा, मगर मैं साफ देख रही हूँ कि आँसू से तेरा दिल डूब गया है।

कमल ने सिर झुकाकर यह झिड़की सह ली। लेकिन; अब उसकी आँखों से धारा बहकर माटी को भिंगोने लगी।

रसिकदास बाहर बैठकर औरों से बातचीत कर रहा था। उसने बाहर से आवाज लगायी—यह ननद-भौजाई में इतनी गहरी क्या छन रही है?

कमल ने झटपट आँसू पोंछकर कहा—अच्छा, अभी आती हूँ।

कादू ने कहा—आज यहीं रसोई पानी रहे।

आज रहने दो। एक जमाने के बाद लौटी हूँ, आज पुश्तैनी अड्डे पर ही पत्तल डालकर खाऊँगी। यहाँ फिर कभी।

कादू मान गयी।

एक दिन के लिये अस्थायी तौर पर कमल ने लता-मण्डप की छाँह में ही गिरस्ती बसायी। कुछ सामान लाने के लिये महंथ बनिये की दूकान गया हुआ था। वहाँ से लौटने पर उसने देखा, कमल ने ईंटों का चूल्हा बना लिया है, सूखे पत्ते सुलगाकर

वह चूल्हा फूँक रही है। चेहरा उसका लाल हो उठा है, जैसे लहू उतर आया हो। गालों पर से होकर चूनेवाले आँसू से उसके सुन्दर दोनों गाल झकमका उठे हैं।

महंथ का जी कैसा तो कर उठा। वह कमल के अन्तर के आवेग से बेखबर तो था नहीं। एक कहावत है, अपनी गोद का लड़का मरे तो पानी में फेंक देना कबूल, मगर किसी को गोद तो हर्गिज नहीं दे सकता। ऐसी ही एक चिढ़ से वैरागी का पतिपना जैसे जल रहा था। उसकी जबान पर कुछ जली-कटी बातें आ गयीं। वह कह उठा—कमल, ये आँसू धुएँ से निकल आये कि ममता के हैं?

दूसरे ही क्षण कमल ने रुखाई से सिर उठाकर महंथ की ओर ताका, जैसे चोट खायी हुई सांपिन फन उठाती है। मगर गजब की औरत है वह, देखते-ही-देखते उसकी नजरों का वह तीखापन जानें कहाँ गायब हो गया। गीली आँखें लिये एक दर्दभरी मुस्कान बिखेरकर बोली—यह माया ही पिघल पड़ी है महंथ, माया ही।

महंथ कुछ भी न बोला। एक उदास हंसी हँसकर रह गया। कुछ देर के बाद उसने कहा—कमल, मुझे तुम विदाई दे दो। —उसने एक लम्बी साँस फेंकी।

कमल ने एक बार निर्निमेष आँखें उठाकर उसे देखा और फिर अपने काम में लग गयी।

महंथ ने उसका हाथ पकड़ लिया। बड़े ही मुलायम ढङ्ग से

कहा—कमल! कमल ने अपना हाथ झटक लिया। उसके ओठों पर एक पल को बिजली-सी चंचल हँसी कौंधकर खो गयी। उसने कहा—मुझमें पाप भरा है महंथ।

महंथ बड़ी भली हँसी हँसा। बोला—नहीं-नहीं कमल, पाप तुममें नहीं, मुझमें है। तुम मुझे विदा कर दो।

कमल चुप हो रही। चुपचाप वह धुआँते हुए चूल्हे को फूंकने लगी। उसकी ओर देखते हुए कब तो महंथ ने गाना शुरू कर दिया—

सुख के लिये बसाया जो घर!
वह भी राख हो गया जलकर!!

महंथ बीच ही में थम गया। पुकारा—कमल, कमल!

कमल ने पुकार अनसुनी-सी कर दी। इसपर भी महंथ ने हँसते हुए ही कहा—वैरागिन, एक हृदय की बात सुनो—

सखि, सुख - दुख भाई - भाई।
सुख के लिये प्रीत जो पालें,
दुख भी करें कमाई!

आठ

कभी वह भी दिन था कि वैरागी-वैरागिन इसी घर-गिरस्ती को ठुकराकर इसी नीयत से, ऐसा ही संकल्प लेकर बहुत बड़ी दुनिया में निकल पड़े थे कि फिर कभी लौट कर नहीं आना है। मगर तकदीर का फेर, फिर वे घूमते-घामते वहीं आ निकले और महज दो दिन टिकने के इरादे से पेड़ की छाँह में डेरा डाला। अब तो कमल वहाँ जैसे बसने की तैयारी कर बैठी। महंथ ने भी ऐतराज नहीं किया, यह भी नहीं कहा कि किसी दिन चलो, हमलोग यहाँ से कहीं निकल पड़ें। दो-तीन महीने बीतते-न-बीतते उन्होंने टुटहे घरों की फिर से मरम्मत कर ली। इसका मर्म वे खुद भी नहीं समझ सके कि ऐसा उन्होंने किया किसलिये। जन्मभूमि की ममता से या इसलिये कि उन्हें खानाबदोशी में भी सुख-शांति नहीं मिली !

पास-पास दो अखाड़े फिर बन गये। मठिया बनाने की

धुन में कुछ रोज खुशी-खुशी ही निकल गये। महंथ मिट्टी कोड़ता रहा—कमल पानी ढो-ढोकर उसे सानती रही; महंथ दीवाल खड़ी करता रहा—कमल उठा-उठाकर काँदो जुटाती रही। एक ने छप्पर-छौनी की, दूसरे ने रंगीन मिट्टी से लीपा-पोती। एक ने किवाड़-खिड़की बैठायी, दूसरे ने खली और गेरू माटी से उसके आस-पास कारचोबी की। इस तरह उनके नीड़ तैयार हो गये और वहाँ अतिथि-अभ्यागतों के दर्शन होने लगे। भोला, विनोद, पंचानन—उनके उन पुराने दोस्तों की बैठक शुरू हो गयी। साँझ को भजन-कीर्तन का जमावड़ा जमता—गा-बजा कर खुशी-खुशी लोग अपने-अपने घर जाते।

रसोई-पानी के बाद कमल ने आवाज दी—महंथ!

मगर महंथ कब का जा चुका था। कमल उसके रसकुञ्ज तक जा धमकी—क्या खूब, खाये बगैर ही चल दिये?

उसकी आवाज में क्रोध और अभिमान का छिपा-छिपा आभास मिलता।

रसिक ने हँसकर कहा—आज जी कुछ अच्छा नहीं है कमल।

सहसा कमल की आवाज का ढंग ही बदल गया—एं! सो क्या? बुखार-वुखार तो नहीं आयगा न? देखूँ, देह गरम तो नहीं है?

लेकिन; सच तो यह कि जब रोग रोजमर्रे का होता है, तो उसकी फितरत से आदमी की खास जानकारी हो जाती है।

कई दिन गुजर गये। तब एक दिन कमल बोली—देखो महंथ, रोग चाहे मन का हो, चाहे शरीर का, उसे पोसना अच्छा नहीं होता। इस निगोड़े रोग से तो तुम पिण्ड छुड़ा ही लो।

रसिक दास सिर्फ उसके मुँह की ओर टुकुर-टुकुर ताकता रहा। कमल बोली—उस दिन तुमने मुझसे विदाई माँगी थी—मगर मैं न दे सकी। मगर आज मैं उसके लिये तैयार हूँ। मेरे नसीब में जो बदा होगा, होगा, लेकिन तुम्हें मैं छुटकारा देती हूं।

रसिक चौंक-सा उठा। बोला—राम-राम! ऐसा क्यों कहती हो कमल?

कमल जरा पेचीदे ढङ्ग से हँसी। हँसकर कहा—हकीकत में तुम्हारी बीमारी तो मैं ही हूँ। फिर ऐसी बीमारी को हाथ जोड़ लेना ही बेहतर है।

रसिक सिर झुकाये बैठा रहा। बड़ी देर के बाद बोला—कमल!

मगर साफ-सुथरा आँगन सूना पड़ा था। कमल तो कब की चली गयी थी। अपनी बात के जवाब का भी उसने इन्तजार नहीं किया था।

दूसरे दिन से रसिक दास ने उत्सव मनाने जैसी धूमधाम शुरू कर दी। जब देखो, ओंठों पर हँसी का त्योहार, मठिया में गीत-भजन का समारोह! भोला आता नहीं कि महंथ उसका स्वागत करता—भोलानाथ, आ जाओ भैया, चिलम तैयार है।

भोला की खुशी का क्या कहना ! कहता—लगाओ महंथ, तुम दम लगाओ।

इस चहल-पहल से छूकर कमल भी मुखरित-सी हो उठी है। भोला की मुस्तैदी देखकर उसकी हँसी उमड़ी-सी पड़ती। जब जब पंचानन आता, तब वह उसे कीर्तन गाने को कहती और खुद ही शुरू कर देती—

गाँजा पीकर बेसुध भोला,

भजन करे पंचानन—भोला······

भोला मृदंग पर थाप मारने लगता, करताल लेकर महंथ गीत को दुहराता और इस तरह कीर्तन जम जाता। इसी ढंग से मजे में ही कुछ दिन और निकल गये।

उस दिन कमल भोला से बोली—भोला, थोड़ी-सी जलावन तो चीर दे भैया।

कहना था कि कुल्हाड़ी लेकर भोला लकड़ी के पीछे पड़ गया। चीर-फाड़कर, ढेर लगाकर बोला—अब ला मेरी मजूरी।

वह बोली—बेरों के दिन तो अब रहे नहीं, नहीं तो भर-मुट्ठी बेर दे ही मारती। इतना कहकर वह ठठाकर हँसी। पूछा—तुझे याद पड़ती है इसकी ?

भोला हँसा—बाखूबी।

रात को जब कीर्तन-गोष्ठी खत्म हुई और लोग-बाग अपनी अपनी राह लगे, तो भोला चिलम चढ़ाने लगा। महंथ भोजन कर चुका, लेकिन भोला तबतक चिलम में दम-पर-दम लगा रहा था।

—भोला, चलो।—इतना कहकर ही महंथ वहाँ से निकल पड़ा।

निहायत अनमना-सा होकर भोला ने कहा—जरा देर और बैठ लूँ।

कुछ ही देर बाद महंथ फिर लौटा। बोला—मेरी चिलम?

चिलम महंथ को मिल गयी। वह बोला—कमल, रात बहुत जा चुकी।

कमल ने जवाब दिया—मुझे मालूम है।

महंथ भौंचका सा रह गया। ऐसे जवाब की उसे कतई उम्मीद नहीं थी। इतने में उसकी ओर मुखातिब होकर कमल ने फिर कहा—महंथ, फूल को माथे लगाने के पहले गौर कर लेना चाहिये कि उसमें कीड़ा तो नहीं है? अगर ऐसा नहीं करते और कीड़ा काट खाता है, तो उसमें कीड़े की कौन-सी खता या फूल ही का कौन सा कसूर?

'फूल तो——' महंथ इतना ही कहकर रुक गया। फिर भर मुँह हँसकर बोला—माला तो गोविन्द की प्रसादी है कमल, उसमें चाहे कीड़ा हो, चाहे काँटे, उसके लिये माथे को छोड़कर और जगह भी तो नहीं!

कमल बोली—कालिख से महज सुफेदी पोती जा सकती है महंथ, उससे रोशनी नहीं ढाँकी जा सकती। यह मैं सौ मुँह से कबूल करती हूँ, कि फूल को तुमने अपनी इच्छा से माथे नहीं लगाया है। खैर; मैं हाथ जोड़कर निहोरा करती हूँ, मुझे अब रिहा करो।

महंथ ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह धीरे-धीरे वहाँ से चलता हुआ। भोला गाँजे की बुत्ती में विभोर था। कमल ने ताकीद की, भोला, अब अपनी राह लग भैया !

और उधर अपने कमरे में बंद होकर बूढ़ा बाऊल बार-बार अपने हृदय में बसनेवाले गोविन्द के पैरों सिर धुन रहा था कि भगवन्, गले की माला को मेरे माथे चढ़ा दो प्रभु, माथे चढ़ा दो।

जरा देर के बाद ही सूनसान कमरे को गुँजाते हुए वह चीख-सा उठा—नहीं-नहीं, मुझे रूप दो, भगवन् मुझे खूबसूरत बना दो। उसके बदले मेरी जनम-जनम की साधना, उसकी सिद्धि, सब चाहे ले लो।

और अपनी यह दिली ख्वाहिश प्रभु की सेवा में निवेदन करके वह सो रहा।

सुबह होते तक महंथ की वह उन्मत्तता जाती रही, मगर इस दुराशा का मोह काटे नहीं कटा। उसने एक बार अपने आपको देखा और उसकी बदसूरती ने मानों उसकी खिल्ली उड़ायी।

उस दिन वह कमल की तरफ नहीं गया। क्या तो सोचकर उसने 'अपनी राह का सहारा' उस झोला को बाहर निकाला। कई जगह से वह फट गयी था। वह उसमें रँगे कपड़ों को पैबंद लगाने लगा।

इतने में भोला ने आकर कहा—महंथ, कमल की बुलाहट है, चलो। अभी-अभी चलो।

बात का कोई उत्तर न देकर महंथ ने गाँजा निकाला। कहा—लो, मलो।

गाँजे की सूरत पर भोला कमल के आदेश को बिसार बैठा। पी-पा चुकने पर फिर उसे याद आयी। महंथ को उसने ताकीद की—चलो।

महंथ उस झोली को कन्धे पर रखकर उठ खड़ा हुआ। बाहर निकला—मगर राह दूसरी पकड़ी। कहा—कमल से कह देना, मैं भीख को जा रहा हूँ।

भोला ठक्-सा रह गया। बोला—बस, हुआ सारा गुड़ गोबर। ये जो दम लगानेवाले हैं, उन सबकी हरकत ही यही होती है।

आज साँझ का अड्डा कैसा तो फीका-फीका रहा। दीये की हलकी रोशनी में लोग-बाग बातचीत कर रहे थे। कमल अपने कमरे में सो रही थी। भजन-कीर्तन बंद। रसिकदास ने आकर कहा—क्यों भई भोला, आज ऐसा सन्नाटा क्यों, भजन-कीर्त्तन ?

भोला ने कहा—वैष्णवी की तबीयत आज नासाज है। माथा दुख रहा है।

महंथ ने कहा—वैष्णवी का सिर दुख रहा है, मगर वैष्णव तो मौजूद है। आओ, जमे।

महंथ ने मृदंग सम्हाला। जो भी हो, गोष्ठी कुछ जमी नहीं। थोड़ी ही देर में उचटकर लोग चलते हुए। महंथ अंदर गया। पुकारा—कमल !

कमल बुत बनी पड़ी थी। चुप ही रही। महंथ उसके बिछावन पर जा बैठा और पूछा—राय कमल!

कमल बोली—आज बेतरह सिर दुख रहा है महंथ।

महंथ ने उसके कपाल पर हाथ रखकर कहा—दबा दूँ?

कमल ने कहा—नहीं-नहीं। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मेरा पिण्ड तुम छोड़ दो।

बड़ी देरतक महंथ की जबान न फूटी। फिर बोला—मगर मैं हार गया कमल, अपने से हार गया। आज गोविन्द का ध्यान करके राह पर पाँव रखे थोड़ी ही दूर जा पाया था कि आँखों में प्रभु के बदले तुम्हारा चाँद-सा मुखड़ा तिर आया। लाख सर मारा, मगर भगवान की सूरत नहीं याद आयी।

कमल ने कहा—तो मुझमें इतना पाप भरा है कि मुझे याद कर लेने पर भगवान भी भुला जाते हैं?

महंथ माथा नवाये चुप बैठा रहा। कमल कहती ही गयी—नहीं जानती, अपनी आँच में तुम आप कहाँ तक झुलसे, मगर मैं तो इस ज्वाला में भुन गयी महंथ।

महंथ जरा देर तक तो मन मारे बैठा रहा, फिर चला गया।

सबेरे कमल जगी। यह तै करके ही वह बिछावन से उठी कि चाहे जो हो, वह अपने आपको सोलहो आने महंथ के ही हाथों सौंप देगी। यह सब कुछ उससे नहीं झेला जाता, झेला नहीं जाता। बाहर जाने के लिये उसने दरवाजा खोला ही कि सामने रँगे कपड़े की एक पोटली दिखायी दी—मानों कोई

एहतियात से उसे वहीं रख गया हो। मन में कुछ आगा पीछा करके कमल ने पोटली को उठाया और खोला। उसमें लाल कमलों की सूखी हुई एक माला थी! उसे हाथ में लेकर वह खोयी-सी वहीं बैठी रह गयी।

धूप निकल आयी। भोला आया और चिलम चढ़ाने लगा। बोला—और महंथ कहाँ गया, अपने अखाड़े में तो नहीं है?

कमल बोली—मैं नहीं जानती।

भोला तम्बाकू पीकर चला गया। उस दिन साँझ की गोष्ठी नहीं बैठी!

नहाने के वक्त कादू आयी। बोली—भाभी!

कमल जैसे नींद से जागी हो, चौंक उठी। बोली—हाँ, चलो।

उसने घड़ा उठाया, गमछा लिया और उसके साथ चल पड़ी। राह में कादू ने पूछा—और वह रंगीन कपड़े में लिपटा क्या है?

कमल ने जवाब दिया—माला है। तालाब में डाल आऊँगी।

कादू कमल की ओर टुकुर-टुकुर ताकती रह गयी—बात कुछ समझ में नहीं आयी। कमल ने बताया—महंथ कल रात कहीं चल दिया बहन, यह वही माला है, जो मैंने महंथ को पहनायी थी।

कादू बोली—एं! मैं तो महंथ को भलामानस समझती थी। और कमल ने कादू को आगे कहन से रोक दिया—नहीं, नहीं बहना, तुझे मालूम नहीं है। तू जानती ही नहीं।

कमल की आँखें गीली हो उठीं। उन्हें पोंछकर वह बोली—और हो चाहे जो भी, वह मेरा पूज्य है, अपने कानों उसकी निंदा नहीं सुननी चाहिये।

फिर दोनों चुप-चुप राह चलने लगीं। चलते-चलते कमल ने कहा—तू ही बता भला, अगर तेरी लछमी की पिटारी ही कोई चुराकर चलना बने, तो उस संसार में रहने को जी चाहेगा, रहा जायगा ?

कादू ने कहा—ऐसी बात नहीं कहते बहू...छिः।

कमल बोली—हाँ बहना, बाऊल की गिरस्ती का देवता ही चोरी चला गया।

जरा देर चुप रहकर कमल बोली—खैर; उसे उसका प्रभु मिले, मिले।

नौ

इस वारदात के बाद कमल पिछली कमल ही नहीं रह गयी। महंथ तो चला गया, मगर उसने उसकी खोज पुकार नहीं की। किसी और से भी उसकी खोज-खबर की बात नहीं कही और किसी ने उसे एक घड़ी को उदास भी नहीं देखा। अब यह भगवान जानें कि रात को सोते समय रोती है या नहीं। सुबह जब जागती है, तो ओंठों में हँसी लिये, और यह हँसी तमाम उसके ओंठों से चिपटी ही रहती है। जरा-जरा-सी बात पर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती है। बात-बात में गाने लगती है। हँसी-खुशी और गीतों की लहर में वह जैसे उथली पड़ती है। साज-सिंगार और भी बढ़ गया है। भरपीठ घुँघराले बाल हैं उसके। बड़े जतन से वह उसे सँवार कर माथे में चूड़ा बाँधती है। अपनी ज़रा-सी टेढ़ी नाक के बाँकपन में ही मृत्तिका से रसकली आँक लेती है। उन्हीं दो पतली लकीरों के बीच कुछ

ऊपर तिलक की ही बंदी बनाती है। गले में दो सूत तुलसी की कंठी। भोला कह उठता, माला क्या अपने आप सोहती है, वह तो फबती है गले की खूबसूरती से।

धीरे-धीरे गर्दन हिलाकर कमल हँस देती।

अखाड़े की नियमित कीर्तनगोष्ठी अब और भी धूमधाम से होने लगी है। भोला उसमें आता है, विनोद आता है, पंचानन आता है और भी बहुतेरे लोग आते हैं। अखाड़े से बाहर यदि कोई नौजवान खड़ा होकर देखता रहता, तो कमल स्नेह से हाथ धरकर उसे जमघट में ले जाती। बड़े-बूढ़े भी अगर चार पाँच दिन उस राह गुजरते, तो कमल उन्हें आदर से बुलाती—आओ, अपने चरणों की धूल दे जाओ। साँझ को कमल खुद गाना शुरू करती, बाकी लोग पीछे से दुहराते। एक पहर रात बीत जाने पर बैठक टूटती। कमल सबसे अपने-अपने घर जाने का आग्रह करती। लोग जाऊँ-जाऊँ तो करते, मगर जी से कोई जाना नहीं चाहता। कमल हाथ धरकर एक-एक को रास्ते पर छोड़ आती—कल फिर आना—हाँ! लौटकर कमल कमरे में जाती और अंदर से उसे बन्द कर लेती। कुछ देर बाद भोला आवाज देता, कमली! ऐ कमली! मगर कोई जवाब नहीं आता। कभी-कभी कमरे से कमली पूछ बैठती—तू फिर लौट आया?

भोला कहता—एक बार और चिलम पीता। जरा दियासलाई तो दे।

अंदर से उत्तर आता—अब अपने घर ही पी जाकर। बीबी भर देगी चिलम। जा।

भोला फिर पुकारता—कमली !

कमल बोल उठती—मेरी हँसिया देखी है कि नहीं, ज्यादा तंग करेगा तो नाक ही काट लूँगी। भले-भले अपने घर जा, हाँ। मैं तेरी बहू और तेरी मा का गाली-गलौज नहीं सुन सकती।

बात भी सही है। भोला की मा और भोला की मा ही क्यों, गाँव-घर के सब लोग उसे बुरा-भला कहते हैं। कहते हैं राम कहो, यही चाल-चलन है? रञ्जन को तो इसने देश-दुनिया से भगाया, महंथ को अँगूठा दिखाया। अब देखो कि किस मुए के सर खेलनी है। जिस पर हर कोई दुर-छि ही करे, वह भी कोई जिंदगी ही है!

एक-एक शब्द कमल के कानों पहुँचता है। लोगबाग भी कुछ इतनी ही दूरी रखकर यह सब कहते-सुनते हैं कि वह सुने। कभी कमल इधरवाले घाट में नहाती है, तो लोग उधरवाले घाट में यह पचड़ा ले बैठते हैं। कहीं वह जाती रहती है, तो पीछे-पीछे लोग कहते चलते हैं। कभी वह राह में पीछे होती है, तो चर्चा आगे छिड़ जाती है।

हँसमुख कमल के ओंठों पर और भी हँसी खिल पड़ती है। उस दिन ऐसा हुआ कि भोला की मा ने उसे बुलाकर ही कह दिया—तेरे लिए मौत भी नहीं आती? मरती क्यों नहीं तू?

कमल इस पर हँसी। बोली—बड़े भाग से तो मनुष्य-योनि में जनम मिला है। भला अपनी इच्छा से क्यों मरूँ और मरना हो भी सकता है ऐसे?

भोला की मा उसकी बतकही से दंग रह गयी। कमल ने तूल नहीं दिया। वह हँसती हुई ही रुखसत हो गयी।

पीछे से भोला की मा ने पुकारा—अरी कमली—सुन तो जा जरा।

कमली बोली—मक्खन के यहाँ जा रही हूँ—नया दुल्हा आया है चाची। फिर सुनूँगी तुम्हारी।

गीत और मजाक से उसने नये दुल्हे के अड्डे को गुलजार कर दिया। साँझ होने को आयी कि वह उठ बैठी।

जमाई ने टोका—बस, चल पड़ीं। अभी तो साँझ ही हुई है।

हँसकर कमल ने कहा—अरे भैया, कुछ न पूछो। मेरे यहाँ जो एक उत्पाती लोगों का फिरका है। पहुँचने में कहीं देर हुई तो घर-द्वार का सत्यानाश करके चलते होंगे सब।

एक दिन बात हद को गुजर गयी। जमींदार का प्यादा आया। उसने पूछा—क्यों वैष्णवी, तुम्हारे पास पान तो होगा? उस दिन असल में जमींदार आ धमके थे और वह पान लाना भूल गया था। सो उसने सादा पान माँगा। कमल ने उसे पान देकर विदा तो किया, किंतु फिर न जाने उसके जी में क्या आया कि वह पानदान लेकर बीड़े लगाने बैठ गयी। एक अच्छी-सी तश्तरी में उसने बीड़े सजाये, अगल-बगल चूना और सुपारी रखी और हँसती हुई तश्तरी लेकर खुद कचहरी में हाजिर हो गयी। तश्तरी जमींदार के आगे रखकर गले में अँचरा डालकर

उसने जमींदार को प्रणाम किया। जमींदार मुग्ध होकर अचरज से कमल के मुखड़े की ओर देखते रह गये। हँसकर वह बोली—मैं आपकी रैयत हूँ—नाम है कमलिनी। वैष्णवी हूँ। आपका प्यादा पान के लिये गया था। मगर पान लगाना क्या मर्द से बनता है कहीं! इसी से मैं खुद पान लगा लायी।

तश्तरी से एक बीड़ा उठाकर मुँह में रखते हुए उन्होंने कहा—आह, केवड़े की ख्वशबू आ रही है।

वैसी ही मीठी हँसी हँसकर कमल ने कहा—जब-जब आपका पान आये, मुझे भेज देंगे। मैं बीड़े लगाकर भेज दूँगी।

वह उन्हें प्रणामकर लौटी जा रही थी कि जमींदार ने कहा—मगर बीड़े तुम्हें खुद पहुँचा जाना होगा।

उलटकर कमल ने पूछा—मुझे?

हाँ, तुम्हें। तुम्हारे हाथ के लगे बीड़े जितने मीठे हैं, तुम्हारी हँसी उससे कहीं ज्यादा मीठी है। मालूम हुआ है, तुम गाती भी खूब हो।

कमल ने अपना घूँघट जरा और खींच लिया। बोली—गीत ही तो मेरी जीविका है मालिक। और उसने जमींदार को सुनाया।

इस घटना का नतीजा यह हुआ कि उस दिन साँझ की गोष्ठी के लिये कमल के यहाँ कोई नहीं आया—भोला तक नहीं।

कमल पूजा के कमरे में बन्द हो रही।

कई दिन बीत गये।

पौ फटते ही जमींदार चले गये। सबेरे की रोशनी के साथ-साथ सारा गाँव एक चीख-चीत्कार से गूँज उठा। कहीं किन्हीं में लड़ाई ठन गयी।

लड़ाई भोला की मा और कादू से हो रही थी। इधर एक अर्से से कादू लोगों के मुँह कमल की शिकायतें सुनती आ रही है—वह जल-भुन जाती है। मगर कमल उसे रोक देती—छिः, बहना, किसी से लड़ना-झगड़ना ठीक नहीं। आज जब जमींदार चले गये, तब लोग फिर कमल की निन्दा ले बैठे। जमींदार को पान पहुँचाने और गीत सुनाने की चर्चा अहले सुबह ही छिड़ गयी। कादू से अब रहा नहीं गया। वह घाट पर आज इसी के विरोध में भिड़ गयी।

भोला की मा अकेली ही नहीं थी—साथ में विनोद और पञ्चानन की मा भी जुट गयी थीं। दोटूक सुनानेवाली दो-एक पड़ोसिनें भी साथ दे रही थीं। मगर कादू की तर्रार जबान और तेजी के आगे सबको मुँहकी खानी पड़ी। इसे लङ्काकाण्ड कहिये या कुरुक्षेत्र! मगर कादू थी कि उसके एक तीर से चारों ओर लाखों-लाख तीर का असर!

कमल ही आकर कादू को अपने घर पकड़ ले गयी। बोली—छिः। कादू पिनक गयी—इस छिः-छाः की ऐसी-तैसी, जिन आँखों को बुराई के सिवा कुछ दीखता ही नहीं, उनकी भी खबर न लूँ? ऐसों की जीभ गल नहीं जायगी?

कमल हँसी। बोली—उन्हें कहने दो। जो चाहें, कहें।

—हर्गिज नहीं। क्यों, कहेंगी क्यों ऐसा? कहनेवाली वे होती कौन हैं? किस चुड़ैल का......?—वह रो पड़ी।

कमलने प्यार से उसकी आँखें पोंछ दीं। कहा—मेरे सिर की कसम।

कादू ने कहा—और तू क्या सोचती है कि तेरा सिर साबित रहने दूंगी मैं? तेरा भी सिर खाऊँगी। ये घुँघराले बाल काट फेंकूँगी—रोड़े से रसकली और बिंदिया घिस दूंगी। ऐसा न किया तो मेरा नाम नहीं, हाँ।

कमल हँसकर बोली—तो तू वही कर बाबा। मुझ पर ही बीते, मगर यह औरों से क्यों?

कादू ने कमल की अनसुनी कर दी। ठोढ़ी पकड़कर उसके मुँह को गौर से देखती हुई बोली—भला तू ही बता, इस चाँद-से मुखड़े में ये दईकी मारी बुराई देखती हैं। फिर इनके आँख न खाऊँ मैं तो करूँ क्या? यह रूप ही नहीं रहेगा, तो ये चुड़ैल देखेंगी क्या, इन मुँहझौंसी की कलूटी सूरत या खाक!

कादू के गाल पर एक ठोकर देकर कमल ने कहा—फिर कही?—और उसने गाया—

बोरी हुई नीम में मेरी ननदिया की बोली,
बुझी हुई विषमें साँपिन की लपलप जीभ लचीली,
अरी ओ, ननदी मेरी।

अब कादू हँस पड़ी। कमल ने कहा—तोबा, तोबा, ऐसी बातें भी कही जाती हैं कहीं?

कादू ने कुढ़कर कहा—आखिर, कहने जोग क्या है, सुनूँ तो कि देवीजी क्या फरमाती हैं ? कहिये।

कमल ने फिर धीमे-धीमे गाया—

ननदी, कहो नगर में,

राधा डूब मरी प्रियतम के कृष्ण-कलङ्क-भँवर में।

कादू ने कहा—बस-बस, गाली आखिर इसीलिये तो देती हूँ मैं। यही तो इन कलमुँहियों को एतबार नहीं होता। उनकी नजर में यह होने जोग बात ही नहीं।

जो भी हो, कमल ने अब निश्चय कर लिया है कि अब अपने इस रूप से वह नर की नहीं, नारायण की पूजा करेगी। ऐसे किस्से इसने तो बहुत सारे सुन रखे हैं। सो जब साँझ की जमघट टूट जाती है, तब बड़े जतन से वह माधवी-मालती की माला गूँथती है और पूजा-घर के सिंहासन पर स्थापित श्यामसुन्दर की तस्वीर को भक्ति-भाव से पहिना देती है। एकटक छवि को देखती रहती है—शायद हँस उठे! घी के दिये से चित्र की आरती उतारती है। यही वजह है कि कीर्तन की बैठक के बाद भोला जब उसका नाम लेकर पुकारता है, तब श्याम की पूजा में तन-मन से लीन कमल के कानों तक या तो उसकी पुकार ही नहीं पहुँचती या जवाब देने का मौका ही नहीं मिलता। अगर भोला इस तरह पूजा के पहले ही पुकारता तो वह कहती—तेरी नाक काट लूँगी, कहे देती हूँ।

इस बात की खबर महज कादू को ही थी। सो आज कादू

से बातों-ही-बातों में कमल ने कहा—बहू, मेरी एक बात माननी पड़ेगी तुझे।

कादू फौरन ताड़ गयी कि वह बात कौन-सी हो सकती है। हँसकर बोली—मानूँगी, मगर मेरी भी एक बात माननी होगी।

कमल ने फीका हँसकर कहा—ये ठहरे हमारे छुटपन के साथी, उन्हें अपने यहाँ आने से मना कैसे करूँ?

कादू ने उसके हाथ पकड़ लिये। कहा—मगर तेरी निंदा मुझसे नहीं सही जाती भौजी।

उसके दोनों होंठ थरथरा उठे।

बड़ी देर के बाद कमल कह उठी—अच्छा, अब वही होगा बहना, वही होगा। जब श्याम की छवि में ही बूड़ना है, तब एकबारगी बूड़ ही जाना भला है। सङ्गी-साथियों को बुलाकर यह मेला लगाने की क्या जरूरत। है न? खैर; अब वही होगा।

कादू बोली—तो विश्वास रखो, आज से तुम्हारी पक्की ननद की ज़ीभ भी कट गयी!

अब से कमल के जीवन का नया परिच्छेद शुरू हो गया।

तस्वीर की पूजा में कमल ऐसी डूबी, ऐसी डूबी, कि शंका से कादू भी सिहर उठी। एक दिन उसने कहा भी—एक बात कहनी है भौजी।

—कौन-सी बात?

—पहले यह बता कि नाराज तो नहीं हो जायगी तू?

कमल ने कोई जवाब नहीं दिया, महज हँसी जरा। उसी में

कादू को अपनी बात का जवाब मिल गया। इतमीनान से वह बोली—मैं कहती हूं, तू इस रास्ते को छोड़ दे। इसमें तू पागल हो जायगी, पागल।

कमल का चेहरा जैसे उड़ गया। बोली—मेरी आशा की दुनिया पर यों मत पानी फेर दे बहन!

कादू थोड़ी देर तक चुप रही। फिर बोली—भगवान बड़े निर्दयी हैं!

एक लम्बी उसाँस भरकर कमल बोली—बड़े, बहुत बड़े निर्दयी—बहुत-बहुत बड़े निदयी!

तस्वीर की पूजा करते पूरे दो बरस निकल गये, लेकिन तस्वीर चुप-की-चुप ही बनी रही। काश, एक दिन को भी उन होंठों पर हँसी झलकती, कभी तो वह सपने में जाहिर होती! कल्पना में किशोर-रूप का ध्यान करते ही चञ्चल किशोर-बन्धु की छवि निखर आती। यकायक उसके जी में आया, बला से यह तस्वीर न हँसे, वह मूर्त्ति तो है, जिसमें युग-युग से प्राण-प्रतिष्ठा की गयी है।

कादू ने कहा—भौजी, तेरे समाज में तो रिवाज है, तू फिर किसी को अपना।

कमल बोली—नहीं-नहीं। मैं अभी निराश नहीं हुई हूं। मैं एक-एक मन्दिर में उसे ढूँढूगी।

कादू सुन्न घसीट गयी—कुछ कहते न बना।

और तब कमल गाँव-गाँव, हर तीरथ और हर मन्दिर की

खाक छानने लगी। अपने हृदय के अन्तरतम से फूटे गीतों का भोग लगाती, प्राणों की पुकार सुनाती, घण्टों अपलक आँखों मूरत को निहारती, क्या पता, कहीं उन होंठों की हँसी फूटकर लहमे में विलीन हो जाय !

एकटक देखते-देखते आँखों में पानी भर आता और पलक गिराये बिना फिर रहा नहीं जाता। आँखों का पानी कपोल-पर से बह निकलता !

दस

इसी तरह पूरे दो वर्ष बीत गये।

पूस की संक्रान्ति के एक दिन पहले, कादू की नजर पड़ी कि कमल के घर का द्वार खुला है। उसे अचरज हुआ। इस संक्रान्ति पर तो वह कभी भी अपने घर नहीं रहती। संक्रान्ति-पर गंगा नहाकर बनवारीबाद में बनवारीलाल की सेवा में उसका हाजिर रहना जरूरी-सा है। सो उसे धोखा हुआ, कमल बीमार तो नहीं पड़ गयी? वह द्वार खोलकर अन्दर दाखिल हुई। पुकारा—भौजी।

कमल नहाने के लिये जाने को तैयार हो रही थी। उत्तर दिया—आयी।

कादू ने पूछा—जी तो अच्छा है न?

बगल में घड़ा लिये वह बाहर निकली और कादू के आगे हाथ चमकाकर बोली—मैंने कहा, आज तो भौजी के लिये ननद

के जी में बड़ी बेताबी दिख रही है। यकायक़ तबीयत के बारे में पूछताछ! खैरियत तो है?

—तबीयत ठीक है तो बनवारीलाल के दरबार में क्यों नहीं गयी? प्रियतम की पुकार को ठुकराकर समय गँवा रही है?

—वहाँ नहीं जाना है।

—नहीं जाना है! क्यों?

—मैंने उनसे मान किया है।

'मान!'—कादू हार्दिक दुःख से ही कुछ हँसी और उसके बाद बोली—मगर तेरे इस मान में तुझे माननेवाला भी है कोई?

कमल ने स्वप्न-आँखों से असीम शून्य की ओर देखा। कादू ने कहा—भौजी, झूठमूठ अपनी सेहत को मिट्टी मत बना। यह होने की बात नहीं।

कमल कुछ सपने-सी देखती जैसे राह चल रही थी। उसने कोई उत्तर तो नहीं दिया, मगर अब की एकटक कादू को देखने लगी। कादू ने कहा—ईश्वर के लिये ऐसी निगाह से तो न देख! तेरी इस नजर से मैं डरती हूँ!

कमल फिर भी नहीं हँसी, नहीं हँसी।

नहाते वक्त कादू ने कहा—इससे तो बेहतर है बहन, कि मुझे ही तू अपना श्याम मान ले, मैं तुझे अपनी छाती से सदा लगाये रहूँगी।

यह कहकर उसने कमल की सुन्दर खुली छाती पर अंगुली

की ठोकर मारी। कमल उस समय हाथों से पानी में लहरें बनाती हुई गा रही थी—

मैं सागर जाऊँगी ;

लिये कामना, वहीं साध अपने मन की साधूँगी।

नहाकर लौटते समय कमल बोल उठी—ननद, तेरी ही बात रही।

—कौन-सी बात ?

—वही, तुझे ही मैं अपना श्याम बनाऊँगी।

—तू मर भी तो जा।

—आज साँझ में जरूर आना। अकेली नहीं रह सकूँगी आज।

—तू ही आजाना, तू ही। शाम को बच्चों की चिल्लपों, खिलाना-पिलाना ! बड़े झंझट हैं। मेरा आना नहीं हो सकता।

—खैर, मैं ही आऊँगी। मगर तुम्हारे देवता तो नाराज नहीं होंगे ?

कादू खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—उसे पहले ही सुला दूँगी या कहीं तम्बाकू पीने के लिये बाहर भेज दूँगी।

कमल ने लम्बी साँस ली।

मगर दोपहर होते-न-होते, कमल झोली झुलाकर घर से बाहर निकल पड़ी। उसे यकायक जयदेव की याद आ गयी। जयदेव के देव-दर्शन को तो वह आज तक कभी नहीं गयी।

पगडंडी, लत्तड़ जैसी टेढ़ी-मेढ़ी होकर, न जाने कितनी ओर गयी थी।

कुछ तेज हवा बह रही थी, जिससे सर्दी बढ़ गयी थी। उसने अपने कपड़े को ही भली तरह बदन में लपेट लिया। अपने आप हँसी भी कि, कहीं कादू को यह खबर मिली तो वह पगली कहकर उसका खूब मजाक उड़ायेगी। मगर पगली बनने में बाकी भी क्या रह गया है? और पगली बनने के बाद भी तो आसमान में फूल नहीं खिलाया जा सका! उसने एक लम्बी साँस ली और मन-ही-मन निश्चय किया कि उसकी यही आखिरी कोशिश होगी। इसमें कुछ हाथ न आया तो आसमान में फूल खिलाने की फिर कभी वह कल्पना ही नहीं करेगी। वह जरा रुकी। एक बार अच्छी तरह निगाह उठाकर चारों ओर देख लिया, फिर अपने आप से गुनगुनाती हुई आगे बढ़ चली। झुटपुट में आस-पास की बस्तियाँ घिसी हुई काली तस्वीर जैसी दिखायी दे रही थीं। आसमान में मेघों की फाँक से आँखमिचौनी खेलता हुआ चाँद भी मानों उस अकेली रात्रि में साथ दे रहा था।

मगर राह जो चली, सो चली—खत्म होने का नाम ही नहीं। कहीं भूल तो नहीं गयी वह? जिधर देखो, रास्ता ही रास्ता है।

वह ठिठक गयी। आसमान की ओर देखा—चाँद ठीक सिर पर टँग आया था। रात भी अब बहुत अधिक हो

गयी है। उसने चारों ओर निहारा। गाँव वहीं, उतनी ही दूर पर तस्वीर-सा दिख रहा था। पहले जितनी दूर पर दिखा था—अब भी उतनी ही दूर। इस सूनसान चँवर के बीचो-बीच वह अकेले खड़ी थी। उसे रोना आने लगा।

इस ओर-छोर ही न चँवर में वह भटक गयी है! आखिर ऐसी गलती उसने की भी क्यों, साँझ के बाद वह अकेली इस चँवर में क्यों चल पड़ी? अब यहाँ उसे कौन राह दिखाये!

मन चूर-चूर हो गया, शरीर भी जैसे टूटने लगा। वह वहीं निरुपाय बैठ गयी और रोने लगी। वह कितनी देर उस तरह रोयी, कौन जाने? यकायक किसी राही की आवाज कानों में पहुँची। कोई गीत गाता हुआ जा रहा था। वह उठी और उस आवाज की ओर जी-जान से दौड़ी। थोड़ी ही दूर पर छाया जैसा कोई दिखायी पड़ा।

उसने करुण-कण्ठ से पुकारा—कौन हो?

फिर पुकारा—कौन हो भैया, जरा देर को रुक जाओ।

राही थम गया।

कमल ने पुकारकर कहा—रुक जाओ, मैं भटक गयी हूँ।

पथिक ने मुड़कर पूछा—कौन हो तुम? और वह आवाज की ओर ही आने लगा। मेड़ पर की एक पगडंडी पर दोनों आमने-सामने हो गये।

कमल ने गौर किया, राही एक जवान है और केवल जवान ही नहीं, अच्छा खासा खूबसूरत जवान।

बादल की एक परत को अपने ऊपर से हटाकर चाँद पूरी तरह निकल आया था। उस चाँदनी में यकायक वह युवक अचरज से बोल उठा--अरे कमल ! मेरी चीनी !

कमल भी शायद उसे पहचान चुकी थी। वह पत्ते की तरह थर-थर काँप रही थी। उसके आगे उसका रञ्जन खड़ा था—उसका वही मिर्च !

कमल के मन में एक सन्देह सुगबुगा रहा था। उसे लगा, उसके आराध्य कृष्ण ही रञ्जन का रूप लेकर सामने प्रकट हो आये हैं। ऐसी घटनाएँ अनेक कथाओं में वह सुन चुकी है। खासकर जहाँ वह जा रही थी, वहीं के कृष्ण ने कभी जयदेव का रूप धरकर जयदेव की पत्नी पद्मावती को ठगा था और कवि की अधूरी कविता पूरी कर दी थी ! वह रञ्जन को गौर से देखती रही।

रञ्जन ने फिर पुकारा—कमल !—इस बार उसने कमल का हाथ धर लिया। कमल अब जैसे होश में आयी। उसे विश्वास हो गया कि यह और कोई नहीं, उसका चिर-परिचित रञ्जन ही है। खेत में उसकी लम्बी छाया आड़ी-आड़ी पड़ी दिखायी दे रही थी। देवता होते, तो उनकी छाया नहीं होती। हो न हो, यह रञ्जन है, वही रञ्जन, देवता नहीं, एक आदमी।

कमल का हृदय फिर भी मारे आनन्द के खिल उठा।

रञ्जन ने ही चुप्पी तोड़ी। बोला—यह इतनी रात गये तुम इस वीरान में कैसे आ निकली कमल !

कमल उसे अब भी निहार रही थी। रञ्जन वैष्णवों का बाना बनाये था। उसे पिछली बात याद पड़ी कि रञ्जन परी के लिये वैष्णव बन गया था। रञ्जन के सवाल से वह जाग-सी पड़ी। कहा—मैं जयदेव जा रही हूँ। और तुम—क्या कहकर पुकारूँ तुम्हें—क्या नाम लिया है ?—कहाँ जा रहे हो ?

रञ्जन वैष्णवों-जैसी सरल स्वाभाविक हँसी हँसकर बोला—मेरा नाम अब रयदास महंथ है।

क्यों तो कमल को शर्म आयी ! तब तक रञ्जन बोला—मैं भी जयदेव चल रहा हूँ, मेरे ही साथ हो लो, क्यों ?

कमल ने कहा—अच्छा, चलो।

कमल के मन में बहुत-सारी बातें उमड़-घुमड़ रही थीं, किन्तु जुबान में शब्द मानों गड़े जा रहे थे। चलते-चलते रञ्जन ने पूछा—रसिकदास गायब हो गया ?

कमल ने कोई उत्तर नहीं दिया। रञ्जन फिर बोला—तुम लोगों की सारी खबरें मैं लेता रहा हूँ। अन्तिम दिनों में बाऊल को अक्ल आयी, चलो, यह भी ठीक ही हुआ।

इसके बाद दोनों फिर मौन हो गये। द्वादशी का चाँद पच्छिम की ओर डूब रहा था। मेघ की छाया गाढ़ी होकर रूप लेती जा रही थी। चारों ओर अँधेरा फैलता आ रहा था। धीमे-धीमे कमल ने पूछा—परी मजे में है न ?

रञ्जन ने एक गहरी साँस लेकर कहा—आखिरी दिनों में उसने मुझे भी बड़ी ही तकलीफ दी, खुद तो उठायी ही। उफ,

रोग के कष्ट की वह चीख-पुकार ! और कैसी भयानक थी उसकी उस घड़ी की सूरत—हड्डियों का एक खौफनाक ढाँचा ! उसकी याद से ही रोंगटे खड़े हो आते हैं।

सम्वेदना में कमल ने भी एक दीर्घ-निश्वास छोड़ा। बोली—हाय-हाय, परी बेचारी चल बसी !

रञ्जन दूसरी बात कहने लगा—भाग्य से गुरु मुझे भले मिले थे। स्थान, देव-सेवा, देवोत्तर—जो कुछ भी था, सब मुझी को दे गये हैं। और कुछ दिन तो कटे भी बड़े सुख से। मगर उसके बाद ही अशान्ति का पहाड़ टूटा। उधर देवता की सेवा और इधर आदमी की।.....अरे रे, तुम तो मारे सर्दी के काँप रही हो। कुछ ओढ़ लो।

कमल बोली—छोड़ो भी।

—नहीं-नहीं, जैसी सर्दी है कि बीमार भी पड़ जा सकती हो। कुछ ओढ़ तो लो।

लाचार कमल को यह कबूल करना पड़ा कि वह चादर लाना भूल गयी है।

रञ्जन बोला—अच्छा, तो एक काम करो, मेरी चादर...

कमल ने उसकी बात काटी, नहीं-नहीं...

दोनों चलने लगे। चलते-चलते रञ्जन ने कहा—हाँ, यह तो खूब याद आयी। मेरे पास तो और भी दो ऊनी चादरें हैं।

अपनी गाँठ से उसने दो चादरें निकालीं—एक नीली, दूसरी

पीले रंग की। नीली चादर को कमल की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा—अगर इनकार करोगी तो मुझे बड़ी तकलीफ होगी।

कमल से अब नकारा न जा सका। नीली चादर उसे फबी भी खूब। रञ्जन ने कहा—मुझसे भूल भी नहीं हुई कमल! मैं हर साल जयदेव आया करता हूँ और राधा-गोविन्द के चरणों में गरम चादरों की भेंट चढ़ाया करता हूँ। कृष्ण को पीली और राधा के गौर अङ्ग में नीली चादर बड़ी खिलती है।

कमल शर्म से गड़-सी गयी। बोली—हरे-हरे! तुमने यह क्या किया?

रञ्जन ने उत्तर दिया—जो किया है, ठीक ही किया है। राधारानी ने ही अपनी भेंट ले ली।

दूसरे दिन अजय नदी में स्नानकर कमल मन्दिर में गयी। ऐसा लगा कि मूर्त्ति हँस रही है। मन्दिर में जहाँ देखिये, बाऊल वैष्णवों ने गाना शुरू कर दिया था। वह भी मजीरा बजाकर गाने लगी—

बहुत दिनों पर प्रीतम आये!
भेंट न होती, मर जाती तो,
अब तक कहाँ रहे बिसराये!

उसके गले के दर्द और गाने की कुशलता से खिंचकर लोग वहाँ जमा हो गये, भीड़ लग गयी। भजन समाप्त हो गया। पुजारी ने प्रभु की एक प्रसादी माला लेकर आशीर्वाद देते हुए उसे कहा—तुम्हारी भक्ति अटूट हो!

प्रसाद पाकर वह नदी में पानी पीने जा रही थी। बाहर मन्दिर के द्वार पर रञ्जन खड़ा था। उसने कहा—क्या मिला प्रसाद में, मुझे भी उसका हिस्सा दो कमल !

कमल बोली—प्रसाद में तो बस माला मिली है।

रञ्जन बोला—तो वही दो।

कमल चुप रह गयी। उसकी सूनी आँखें अपलक रहीं। रञ्जन बोला—कमल, राधारानी की दया क्या मुझ पर नहीं होगी ?

कमल बोली—खैर, माला ही लो। बहुत-बहुत तरह से सोच-विचार कर देखा है। क्या चाऊल और क्या देवता, सब में जैसे तुम्हीं को आज तक चाहती आ रही हूँ मैं।

ग्यारह

जयदेव-धाम में रञ्जन को अपनाकर कमल वहीं से उसके साथ हो गयी। घर की उसे सुधि ही नहीं रही। कादू की याद उसे आयी जरूर, मगर वह उसके आगे मानों बड़ी छोटी हो गयी। सोचा, उसे खबरभर भेज देने से काम चल जायगा या कभी दोनों प्राणी भीख के लिये उसके दरवाजे पर ही धमक जायँगे। मुई ननद देखते ही अवाक् हो जायगी!

कल्पना के ताने-बाने बुनती हुई वह रञ्जन के अखाड़े में हाजिर हुई। सूरज तब डूब रहा था। गोधूलि की धूमिल आभा झलमला रही थी।

आज उसकी खुशी और सन्तोष की सीमा नहीं थी। मगर उसे व्यक्त करने में वह लाचार थी, इसलिये कि ऐसा कोई उपयुक्त शब्द नहीं मिल रहा था, जिससे वह रञ्जन को सम्बोधित करे। क्या कहे—वही पुराना सम्बोधन—मिर्च! राम-राम! महंथ

कहने को भी जी नहीं चाहता, शर्म-सी लगती है। बहुत सोचा, बहुत विचारा, मगर 'मिर्च' के मुकाबले महंथ सम्बोधन उसे न तो प्रिय लगा, न मीठा मालूम हुआ।

रञ्जन का हृदय आनन्द से उमड़ता आ रहा था। कपोती को घेर-घेरकर कपोत जैसे योंही गुटरता रहता है, वह रास्तेभर कभी कमल के आगे और कभी पीछे बेमतलब बकता जा रहा था।

जब गाँव की मुहानी पर पहुँचा, तब बोला—मगर आज मेरे ठाकुर को गीत सुनाना पड़ेगा तुम्हें।

कमल ने गर्दन हिलाकर हामी भरी। कौन-सा गीत वह सुनायेगी, यह भी मन में निश्चय कर लिया। उस गीत की कड़ियाँ इसी समय उसके मन में गूँज-सी उठीं—

आजु रजनी हम मागे बिताय लूँ,
पेखलुँ पियमुख चन्दा।

दोनों अखाड़े के समीप आ पहुँचे। दरवाजा खोलकर रञ्जन बोला—अन्दर चलो, यही हमारा अखाड़ा है।

कमल अन्दर दाखिल हुई। खुले आँगन में खड़े होकर एक बार चारों ओर देखा। जगह खासी सुन्दर थी। केवल सुन्दर ही नहीं, एक भिखारी की होने के बावजूद भी उसमें ऐश्वर्य के लक्षण स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। एक ओर बाँस के जाफरी बेड़े के बीच गेंदे के पौधे लगे थे, जो फूलों से गदरा गये थे। बीच-बीच में राधापद्म के कई पौधे थे, जिनमें पीले फूलों का मेला-सा लगा था। एक ओर सन्ध्यामणि में फूल खिलते आ रहे थे। बगल

में आम के पाँच-छः पेड़, जिनकी डालें मंजर के भार से टूटती-सी जा रही थीं। आँगन के बीचोबीच सहिजन का पेड़ खड़ा था, जिसकी ऊँची डालें फूलों के बोझ से जमीन पर नव गयी थीं।

सामने ही ओसारा, एक ऊँचे चबूतरे पर मिट्टी का घर। घर से ठीक सटा हुआ समकोण में एक दूसरा घर। उसका भी ओसारा ऊँचा और पक्का। शकल-सूरत से यही ठाकुरबाड़ी-सा लग रहा था। चौखट और सीढ़ियों में अस्पष्ट होने पर भी पूरे हुए चौके झलक रहे थे। कमल का अन्दाजा गलत नहीं निकला। रञ्जन ने उस दूसरे घर का दरवाजा खोला और कहा—आओ कमल, प्रणाम कर लें।

मन्दिर में गौराङ्ग प्रभु की मूर्त्ति थी। पास-पास बैठकर दोनों ने प्रणाम किया।

'महंथ !'—पीछे से किसी की आवाज आई, जैसे कोई कमजोर आदमी अपनी छाती चीरकर एक शब्द कह सका हो। कमल चौंक पड़ी। उसका प्रणाम अधूरा ही रह गया। उलटकर उसने पीछे की ओर देखा। देखा कि उधरवाले ओसारे में एक अजीब शक्ल की औरत जी-जान से दोनों हाथों से मिट्टी थाम कर काँप रही है। कमल का सर्वाङ्ग सिहर उठा। मनुष्य की ऐसी बदली हुई घिनानी सूरत अपने जीवन में उसने और कभी नहीं देखी। उभरी हुई हड्डियोंवाली छाती से कपड़ा खिसक गया था। कमल के अचरज का ठिकाना नहीं रहा कि उसकी छाती में चमड़ी से झँपी सिर्फ हड्डियाँ ही रह गयी थीं। उन

हड्डियों की कैद से बाहर निकल पड़ने को उसके प्राण मानों कलेजे के द्वार पर सिर पीट रहे हों।

रञ्जन ने बड़ी रुखाई से डाँटा—फिर, फिर तू बाहर निकल आयी परी!

अजानते ही कमल के मुँह से निकल पड़ा—परी!

यही परी है! उस परी की आज ऐसी दशा! वह सांवली-सांवली-सी तन्दुरुस्त लड़की आज ऐसी हो गयी है। उस भरे हुए सुन्दर मुखड़े की ऐसी गत हो गयी है! चेहरे की हड्डियाँ भी चमड़ी के अन्दर से बाहर झांकने लगी हैं। गाल की तो निशानी भी नहीं रह गयी है, उसकी जगह दो गढ़ेभर रह गये हैं। परी के बाल देखने ही लायक थे, मगर आज माथे की सफेद चमड़ी चकमका रही है। दो-चार लटें हैं भी तो भूरी हो गयी हैं, रोग की रुखाई से घिनौनी दीखती हैं। शरीर में हड्डियों और चमड़ी के बीच एक उसकी आँखें ही अजीब रोशनी लिये दपदपा रही हैं। ऐसा लगता है, सर्वांग से निर्वासित होकर उसके हृदय ने आँखों में ही बसेरा लिया है। उन निगाहों के द्वारा ही क्रोध, हिंसा, अभिमान, लोभ, ममता, स्नेह—सब कुछ जैसे अपने को जाहिर करता है।

रञ्जन की रूखी डाँट को परी ने जैसे अनसुनी कर दिया। वह करुणा से चीखकर पूछ उठी—और साथ में वह कौन है महंथ?

रञ्जन बोला—अरे, पहचान नहीं सकी तुम? यह कमल है, कमल। तुमने ही तो कहा था—

पागल की तरह परी ने अपनी छाती पीट ली और कहा—हर्गिज नहीं, नहीं, मैंने नहीं कहा है। वह तो मैंने झूठमूठ कहा था, केवल तुम्हारा मन रखने के लिये, मन जानने के लिये कहा था।

इतना कहकर वह जार-बेजार रो पड़ी।

कमल काँप रही थी। अपने हाथ का सहारा देकर रञ्जन ने कहा—कमल!

ठाकुरबाड़ी के एक पाये को थामकर कमल ने कहा—यह परी के जीते-जी तुमने क्या किया? मुझ से तो तुमने यह कहा नहीं। छिः!

रञ्जन बोला—मगर मैंने यह झूठ तो तुम से नहीं कहा कि परी गुजर गयी है।

बात का सच-झूठ जाँचने का वह समय ही नहीं था। कमल ने कहा—तुम परी को पकड़ लो, पकड़ लो—गिर पड़ेगी वह।

रञ्जन ने परी को थामकर आवाज दी—परी, परी!

उसके पैरों पर पछाड़ खाकर परी बोली—आखिर यह क्या किया तुमने? तुम से महज दो दिन भी सब्र करते न बना। मैं तो अब जीने की नहीं, शायद दो दिन भी न बचूँ। मगर इन दो दिनों के लिये मेरी छाती पर तुमने यह कैसी बिजली वर्षा कर दी?

वह फिर हो-हो करके रो पड़ी।

हाड़-माँस के पुतले के लिये यह कैसी छीना-झपटी! कमल को बड़ी दया हो आयी। वह खुद एक नारी है। उस बेचारी परी के कलेजे में क्या टीस है, वह टीस कितनी दर्दीली है, इसे उसने दिल से महसूस किया! इतना ही क्यों? आज उस बेचारी को यह भी बता दिया गया कि अभागी नारी, तुझे मरना ही पड़ेगा, एक छूँछे कंगाल की मौत तुझे मरना होगा!

कमल की आँखें गीली हो उठीं। वह परी के पैरों के पास जा बैठी। उससे पूछा—परी, मुझ पर गुस्सा हुई बहिन?

'दूर हो, निकल जा मेरी आँखों के आगे से।'—परी के कंकालसार कमजोर शरीर में जितनी भी ताकत बच रही थी, सब को बटोरकर उसने जोर से कमल पर लात मारी। कमल लुढ़क गयी। रञ्जन को कोई मौका न देकर कमल खुद ही उठ बैठी।

'अरे, तुम्हारी भँहों से लोहू बह रहा है!'—रञ्जन बोला। और परी को छोड़कर वह कमल की सेवा में जुट गया।

परी की आँखें खूँखार बाघिन जैसी हिंसा से जल रही थीं।

कमल ने उन आँखों को देखा था। भँहों पर फेरे हुए लहू लगे अपने हाथ को देखकर कमल बोली—तुम फिक्र न करो, मैं धोये लेती हूं। चोट नहीं लगी। वह बेचारी बीमार है—तुम उसी की हिफाजत करो।

कमल बाहर आयी। चारों ओर देखा। एक आम के पेड़ के नीचे पानी डालने के लिये नाला-सा बँधा था। वह वहीं

लहू घोने बैठ गयी---इतने में परी की बातें उसके कानों में पहुंचीं। वह कह रही थी---ईश्वर के लिये मुझ पर इस तरह मत ताको, क्रोध न करो। दो दिन, केवल दो दिन, उसे तुम परायी बना कर रखो, आदर-जतन न करो। बस, दो दिन से ज्यादा मैं बचने की भी तो नहीं—यकीन करो।

शाम को ठाकुर के सामने रोज कीर्तन गाया जाता था। रञ्जन ने कमल से आग्रह किया—चलो, मेरे प्रभु को भजन सुनाना।

कमल बोली—मैं नहीं जाती।

रञ्जन को ताज्जुब हुआ। बोला---अरे, यह तो यहाँ का हर रोज का नियम है, और मैंने लोगों से पहले ही तुम्हारे बारे में कह रखा है। सब आने भी लगे।

कमल ने उसी दृढ़ता से जवाब दिया—मैं नहीं जाती—जरा परी की दशा तो सोच देखो। मेरा गाना सुनकर वह पागल न हो उठे।

रञ्जन ने लम्बी उसाँस ली। कहा—हुं:।

कमल बोली—तुम जाओ, साँझ का पहर बीतता जा रहा है। तुम्हीं कीर्तन गा दो। मैं न हो तो, तब तक परी के लिये साबू या बार्ली बना देती हूं।

रञ्जन जरा गरम हो गया। कमल का हाथ धरकर बोला—कमल, मैं कहता हूं, चलो। देवता की सेवा पहले है, बाद में और कुछ।

भँवें सिंकोड़कर वह बोली—आज तक मैं भी यही मानती रही थी। मगर अब मैंने अपना धर्म बदल दिया है। मेरा पिण्ड छोड़ो।

रञ्जन ने कमल का हाथ छोड़ दिया। धीमे-धीमे कमल एक ओर को चली जा रही थी कि रञ्जन बुदबुदाया—दईमारी न तो मरेगी, न मेरे सर की किचकिच दूर होगी।

कमल मुड़कर खड़ी हो गयी। धिक्कारभरी नजर से रञ्जन को देखकर बोली—देवता के चरणों में मैंने अपने प्राण उँड़ेले हैं, मगर कभी आश्वासन तक नहीं मिला है। वे पत्थर के हैं, इसलिये अब मैंने आदमी की शरण ली है। इस प्रकार आदमी के लिये भी जी में नफरत न जगाओ, दया होगी!

रञ्जन सिमटकर जैसे छोटा हो गया। उधर कमरे में परी फफक-फफक कर रो रही थी।

निदान रञ्जन खुद मृदंग लेकर भजन करने बैठा। लौटकर आवाज दी—कमल!

कमल परी के पास बैठी थी। अभी-अभी बेचारी के आँख लगी थी। किन्तु उस हालत में भी दबी हुई रुलाई की लम्बी साँस समय-समय पर फूट निकलती थी।

कमल पाँव दबाये बाहर निकल आयी। रञ्जन ने कहा—लो।

उसने फूलोंभरी डाली बढ़ायी। हाथ फैलाकर कमल ने उसे लिया और प्रश्नभरी आँखों से उसकी ओर देखती रही।

हँसकर रञ्जन बोला—सेज-सजाने के लिये ले आया हूं।

—नहीं, वह नहीं होगा।

रञ्जन ने ताज्जुब से पूछा—नहीं.क्यों ?

फीकी हँसी हँसकर उसने जवाब दिया—मेरी जिन्दगी भूल ही करते बीती है। अगर एक पर दूसरी भूल को खड़ी कर दी जाय तो मेरी भूल भी उतनी ही बड़ी हो जायगी, जितनी बड़ी कि मैं हूं। मुझे ऐसा लग रहा है कि मैंने फिर से यह भूल की है।

रञ्जन को उसकी बातें खाक भी समझ में नहीं आयीं। वह अचरज से कमल की ओर ताकने लगा। कमल बोली—मैं पूछती हूँ कि जिस आदमी की जरूरत नहीं रह गयी, उसकी तुम्हारी नजरों में कोई कीमत ही नहीं है, क्यों? जरा सोच तो देखो एकबार परी की बात।

रञ्जन ने कहा—तुम क्या निखालिस पत्थर की ही बनी हो कमल ?

'मैं ?'—कमल हँसी। कहने लगी—मैं अगर पत्थर होती, तो पत्थर के देवता से ही जी लगाती। यह बात तुमसे मैंने और भी एक बार कही है। लेकिन ; मैं मनुष्य हूँ, इसीलिये मनुष्य पर पागल हो सकी हूँ। मनुष्य से मोह किये बिना मैं रह जो नहीं सकती।

—'रहने भी दो।'—रञ्जन जरा गरमाया-सा वहाँ से जाने लगा।

अन्दर से परी पुकार रही थी—महंथ !

कमल जल्दी-जल्दी परी के बिछावन के पास जा खड़ी हुई। उस पर नजर पड़ते ही परी फिर चीख उठी—नः, तुम मेरी नजरों से दूर हट जाओ।

हटकर कमल बाहर निकल आयी। आकर रञ्जन से कहा—तुम्हें ही बुला रही है, जाओ।

रञ्जन की इच्छा तो नहीं थी, मगर वह गया। परी ने पूछा—आज तुम लोगों का कोहवर है न? तोशक-तकिया सब—

रञ्जन बोला—तुम फिक्र न करो।

—न-न, बिछावन उतार लो—ऊपर रखे हैं। मगर जिन सब को मैंने चाव से बनाया है, उनमें से कुछ मत लेना। यह मुझसे नहीं सहा जायगा। अपनी जान रहते मैं आँखों से यह नहीं देख सकूँगी।

रञ्जन कुछ रूखा-सा जवाब देने जा रहा था कि पीछे से कमल के आने की आहट मिली। वह कह नहीं सका। उसने परी का सिर सहला देना चाहा, लेकिन उसका हाथ हटाकर परी ने कहा—रहने दो।

जान बची लाखों पाये। रञ्जन चला गया।

खा-पीकर रञ्जन चिलम पी रहा था कि कमल आयी। बोली—तुम्हारा बिस्तरा परी के कमरे में रहेगा।

रञ्जन चौंक गया। तब तक कमल बोल उठी—इसमें नाहीं-नूहीं न करने दूंगी मैं। मेरी बात तुम्हें माननी ही पड़ेगी।

मगर रञ्जन अपने को रोक नहीं सका। वह बार-बार

नकारने लगा—वहाँ की बदबू से मुझे नींद ही नहीं आयेगी। कमल ने शान्ति से जवाब दिया—तब तो अगर कहीं मेरी भी दशा परी जैसी हो जाय, तो तुम मुझसे इसी तरह नफरत करोगे–तुम मुझे फेंक दोगे कूड़े के ढेर पर ?

रञ्जन चुप रहा और जरा देर ठहरकर हँसते हुए कहा—तुम्हारी ही जीत रहे। कमल ने झुककर रञ्जन के पैरों की धूल ली। रञ्जन ने खींचकर उसे अपनी छाती से लगा लिया—चुम्बन से उसके होंठों को भर दिया—आलिङ्गन से उसे जैसे वह पीस देने लगा। आवेश में कमल की भी दोनों आँखें मुँदती आ रही थीं—यह सुख उसे इसके पहले नहीं मिला था। यों तो रसिकदास ने भी उसे इस तरह छाती से लगाया है, मगर उस आलिङ्गन में वह जैसे बुत बन जाती थी। ऐसे ही समय अन्दर से परी का स्वर सुनायी पड़ा—वह शायद रो रही थी। लहमे में कमल आपे में आ गयी। बोली—छोड़ दो मुझे।

—नहीं।

वह बोली—छोड़ो। जो मौत की घड़ियाँ गिन रही है, उसे इस तरह ठगो मत अब।

रञ्जन की बाहें ढीली हो आयी थीं। कमल ने अपने को उससे मुक्त कर लिया और बोली—अब सो जाओ जाकर।

उसने उत्तर की राह नहीं देखी। कमरे में गयी और अन्दर से कुण्डी बन्द कर ली।

सबेरे कमल परी के कमरे की झाड़-पोंछ करने गयी। उसने

देखा कि परी उसीको एकटक निहार रही है। उसे डर लगा कि वह फिर कहीं लाल-पीली न हो जाय।

'कमली !'—परी ने उसे पुकारा।

फिर पुकारा—कमली, मेरे नजदीक आ बहन। डर मत।

कमल नजदीक जाकर बैठ गयी। उसके दुबले शरीर पर हाथ फेरते हुए बोली—तुम से डर काहे का बहन !

मगर परी ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। एक लम्बी उसाँस भरकर बोली—रूप तो किसी दिन मुझे भी था।

भूमिका से परी चौंक उठी। एक करुणाभरी हँसी हँसकर परी ने कहा—मैंने तुम्हें आशीर्वाद देने को बुलाया है। कोई छ महीने से खाट पकड़ी है मैंने और ये छहो महीने मुझे अकेले खाट पर रो-रोकर बिताना पड़ा है। जी में बड़ी साध थी—तेरा भला हो, तूने मेरी वह साध पूरी की है।

इससे आगे वह बोल नहीं सकी—यकायक घबड़ाकर व्यस्त हो पड़ी। कमल ने अस्थिर होकर पुकारा—परी, परी !

तकिये में मुँह गाड़कर परी बच्चे की तरह फफकने लगी। बोली—नहीं-नहीं, तू मेरे सामने से चली जा।

उसी दिन शाम को परी संसार छोड़ गयी। मानों एक उस साध ने उसके प्राणों को पंजरे में रोक रखा था। ज्यादा दिन के रोगी होश में ही मरते हैं—अक्सर ऐसा देखा जाता है। परी को भी वैसा ही हुआ। तीसरे पहर जब साँस बढ़ गयी, तो रञ्जन ने कहा—चलो परी, तुम्हें प्रभु के आगे ले चलें, दर्शन कर लो।

हाथ हिलाकर उसने 'ना' कहा।

आखिरी दमतक शायद मनुष्य की जीवन-ज्वाला नहीं मिटती। परी के कष्ट का अन्त नहीं था, फिर भी हाँफते हुए उसने कहा—देवता की मैंने बड़ी सेवा की है, मगर मुझे दिया क्या देवता ने? केवल देवता ही नहीं, तुमने भी क्या दिया महंथ? तुम्हारा चेहरा तक देखने की इच्छा नहीं होती। हट जाओ, मैं अकेली ही रहूँगी।

फिर उसने करुणा की हँसी हँसकर कहा—आज मैं अकेली ही हूँ।

अपने जीवन के सारे कड़वे रस को पीकर आखिर वह अभागिन दुनिया से गयी!

और उसके बाद?

उसके बाद एक अटूट मिलन का गहरा आनन्द। इसी गहरे आनन्द के बीच साँसों की तरह दिन-रात स्वच्छन्द जाने लगे। मीलन के आवेश में आँखों की पलकें झपकी आतीं और उसी झपकी के खोलते-खोलते रात आ जाती। रात बीतती—फिर सबेरा आ निकलता। पंछी के कलरव के साथ जिसकी आँखें पहले खुलतीं, वही दूसरे के कानों में धीमे से गा उठता—

पंछी बोले, हुआ सबेरा
नील कमल-दल खोलो
अरुण अधर से बोलो!

नींद टूट जाती। फिर वही हँसी-खुशी, रोना-गाना,

अभिनय-अभिमान। फिर मिलन, फिर हँसी-खुशी। थोड़े में यही कि दो तरुण-तरुणियों के जीवन में जो लहरें आती हैं, वही। पुरानी बातें घूम-फिरकर वेश बदलकर उनके जीवन में खास रूप में दर्शन दे जातीं। वे लेकिन नकली उस रूप को नहीं पकड़ पाते। उन्हें उनमें नवीनता की झलक मिलती।

मगर कमल कभी-कभी चौंक उठती। उसे लगता, अपनी ईर्ष्याभरी आँखें खोले कहीं अँधेरे में परी खड़ी है।

होली का त्योहार। फागुन की पूनो। दक्खिनी हवा जरा तेज बह रही थी। घर में झूला लगाया गया था। प्रभु को अबीर-गुलाल की भेंट देकर हाथ में थाली लिये रञ्जन ओसारे तक आया। कमल माला गूँथ रही थी। कुतूहल से रञ्जन ने गुलाल फेंकर कमल को मारा। रँगा चेहरा लिये कमल भी उठी और गुलाल उठाया।

मगर गुलाल उसके हाथ में ही रह गया। वह घबड़ाकर बोल उठी—रो कौन रहा है?

—कहाँ रो रहा है?

—उस घर में।

उस घर में यानी जहाँ परी मरी थी। सचमुच ही रुलाई की एक खिंची आवाज विलाप के करुण छन्द-सी उठ रही थी।

हिम्मत बाँधकर रञ्जन अन्दर गया। खिड़की का एक पल्ला हवा के झोंके से हिल रहा था और उसी के जंग लगे कब्जे से वह आवाज उठ रही थी!

रञ्जन हँस पड़ा—इतना डर लगता है तुम्हें ?

कमल भी हँसने की कोशिश करने लगी ।

ऐसे ही दिन बीतते जा रहे थे। दिन, महीना, बरस और बरसों। कोई पाँच साल बीत गये, तब की बात। एक दिन कमल को यकायक यह महसूस हुआ कि दिन जैसे बड़े लम्बे हो उठे हैं। दिन का रुख भी मानों बदल गया है, अब वैसे नहीं कटते, बहुत धीमी पड़ गई है चाल। कभी-कभी तो काटे भी नहीं कटते।

जमीन-जगह से रञ्जन इस बुरी तरह उलझ गया है कि उसे फुर्सत ही नहीं मिलती। होली आने पर रंग खेलने का उसे वह नशा नहीं आता। झूलन में अब वकुल की डाल पर झूला नहीं लगता। रञ्जन पेड़ पर नहीं चढ़ सकता। कहता है, मुफ्त में हाथ-पाँव टूट जायँगे, तो बुढ़ापे में जुटने के भी नहीं। रास के समय देवता का नेग निभाकर वह झटपट सो जाता है। मगर कमल के नींद नहीं आती। बीच-बीच में वही पुराना हौआ उसे धर दबोचता है। लगता है, उस घर में परी चल-फिर रही है।

इस तरह कमल का दम मानों घुटने लगा। उस दिन जब रञ्जन थाली पर बैठा, तब कमल बोली—सुनो, हम लोग एक बार तीरथ से घूम आयें, चलो।

ताज्जुब से रञ्जन उसकी ओर ताकने लगा। कमल बोली—यहाँ तो अब उबकाई आती है, चलो एक बार ब्रज से घूम आयें।

रहस्यमय हँसी हँसकर रञ्जन बोला—खर्च का भी सोचा है ? भिखारी के झोले में तो उतना है कहाँ ?

हँसकर कमल बोली—पैसे तो तुम्हारे पास हैं।

रञ्जन साफ इनकार कर गया—फूटी पाई भी टेंट में नहीं है।

कमल जरा देर चुप रही। बोली—मगर पैसों की जरूरत भी क्या है ? भीख की झोली तो है—उसे ही कंधे पर डालकर चल पड़ें, चलो।

रञ्जन ने टका-सा जवाब दिया—मेरे बाप भी उठ आयें, तो यह नहीं होने का।

कमल को चोट लगी, मन में अभिमान भी हुआ। लेकिन ; पता नहीं क्यों तो वह उसे प्रकट नहीं कर सकी।

इसके बाद ही कमल की जैसे आँखें खुल गयीं। उसने महंथ की सेवा में ध्यान लगाया। रञ्जन भी इससे थोड़ा प्रसन्न हुआ। इस पर भी कमल के जी में एक दबा असन्तोष घुमड़ता रहा। वह अपने पुराने दिनों को पाने का उपाय आकुल हो-होकर ढूँढ़ने लगी। होली पर आज भी उसे उसी तरह रंग खेलने की ललक होती है, रास की रात को तमाम रात जगकर वह उसी तरह गीतों में बिताना चाहती है—गर्ज कि जीवन में उसे यह सब चाहिये।

सावन आ गया। सिर पर सलोना-झूलन की रात। उजियारे पाख की वर्षा से भरी रात। रञ्जन घर नहीं था, कमल ओसारे पर बैठी आकाश की ओर देख रही थी। एक ओर

घर जोगानेवाली बुढ़िया सो रही थी। जब रञ्जन नहीं रहता, तब बुढ़िया रात को वहीं सोती है।

मेघ से ढँके चाँद की चाँदनी में लगातार बरसनेवाली धारा कुहरे-सी दिखायी दे रही थी। आज की रात कमल को बड़ी भायी। मानों आकाश उतरकर श्यामला धरती को गले लगाना चाहती है और अदृष्ट की तरह उसकी राह रोके हुए हवा हा-हा करके हँसती है, इसी दुःख से जैसे आकाश जार-बेजार रो रहा हो!

बार-बार कमल ने ऐसी ही एक रात और होने की कामना की। एक अच्छी-सी कल्पना करके वह पुलकित हो रही थी। मन्दिर में झूला पड़ा था और राधा-श्याम की मूर्ति झूले पर झूल रही थी। कमल ने मन में ठान लिया कि अपने सोने के कमरे में झूला डालकर हमलोग भी एक दिन जरूर झूलेंगे।

अपनी इस कल्पना में वह सब कुछ भूल गयी। उसी हरे रंग की साड़ी को वह पहनेगी—बाल बिखरे ही ठीक रहेंगे। नाक पर रसकली रहेगी, ललाट पर चन्दन। महंथ के गले में गन्धराज की माला डाल देगी और अपने लिये उसे बेला की माला ही जँची।

मगर ऐसी सुहानी रात क्या फिर आयेगी? कमल को अफसोस हो रहा था—आज कहीं वह घर होता! वह अपने प्यारे की एक दर्दभरी कमी महसूस करने लगी। कहीं कोई नहीं था, मगर वह आप अपने ही निकट लज्जित हो रही थी।

बीच में जाने कब बुढ़िया की नींद टूट गयी थी। करवट बदलती हुई बोली—घर में चिराग तो कहीं नहीं दीख रहा। आज साँझ को दिया जलाया भी था या नहीं!

कमल को होश आया। ठीक ही तो, महाप्रभु के सामने भी दीया नहीं दिया गया है—कीर्तन नहीं गाया गया है! उसने कपड़े बदल डाले और चिराग जलाने बैठी। दीया जलाकर मजीरा लिये गाने बैठी—

ए भरा बादर माह भादर शून्य मन्दिर मोर!

अरे-रे, यह क्या कर रही है वह। युगल मूर्ति झूले पर हैं और वह कौन-सा गीत गाले लगी? देवता से उसने मन ही मन बार-बार क्षमा माँगी और झूले का गीत गाने लगी।

सबेरा हुआ। बदली वैसी ही छायी रही। मेघभरे आकाश की ओर देखकर कमल मोर-सी मगन हो गयी। सोचा, आज की रात तो कल से भी सुहानी होगी—चाँद की एक कला और बढ़ जायगी आज। वह झूले के इन्तजाम में व्यस्त हो गयी। बैठने के बड़े पटरे को उठा लायी—उसे धो-पोंछकर उसमें चौक पूरा—चौक में अगल-बगल दो कमल के चित्र बनाये। बना-बनूकर दूकान गयी। दूकान से लौटी, तो महंथ आ पहुँचा था। महंथ पर नजर पड़ते ही उसने अपने अँचरे में कुछ छिपा-सा लिया। रञ्जन ने उसका कुछ भी खयाल नहीं किया, वह आप ही आप बड़बड़ा रहा था—नाक में दमकर दिया बाबा, क्या दिन और क्या रात, बस टिप-टाप जारी है।

बरसना ही है तो झाड़कर बरस जा और खुल जा।

कमल बोली—बरसता ही है, तो क्या बेजा है? इसमें तुम्हारा-हमारा क्या बिगड़ता है। कल कैसी सुहानी बनी थी रात, सो तो कहो।

रञ्जन ने कहा—हूँ, रात तो हुई थी, मगर पानी-काँदो से पाँव में सड़न हो गयी, सड़न। तुम्हारी बला से, तुम तो कमल ठहरी, पानी ही भला।

कमल खिलखिला उठी। इस जरा से आदर में ही वह पानी-पानी हो गयी। अब उसने अँचरे से वह छिपी हुई चीज निकाली। वह थी डोरी। उसे रञ्जन के सामने रखकर कहा—देखो तो सही।

रस्सी पर एक नजर डालकर पूछा—क्या होगा इसका?

कमल युवती-जैसी तमककर बोली—क्या कहने हैं, मैंने हजरत से पूछा कि बताओ कैसी है, तो आप यह पूछने लगे कि होगा क्या इसका। पहले मेरी बात का तो जवाब दे लो।

जरा घुमा-फिराकर रस्सी को देखकर रञ्जन बोला—हाँ, मजबूत तो है। मगर होगा क्या इसका, सो तो बताओ।

कुतूहल से कमल बोली—क्या होगा, यह तुम बताओ तो जानूँ। देखूँ कि तुम कितने पानी में हो।

रञ्जन आजिज आ गया। बोला—अरे बाबा, वही तो मैं बार-बार पूछ रहा हूँ।

कमल बोली—खैर, घबराओ मत, बताती हूँ। पहले यह तो बताओ कि दो जने का वजन यह सह लेगी या नहीं।

—क्यों, क्या इसे गले में बाँधकर झूलना होगा? अरे, भार खूब सह लेगी।

कमल के चेहरे का रंग फीका हो गया। वह रञ्जन की बात को मजाक मानकर आश्वस्त नहीं हो सकी। फिर भी जरा हँसकर कहा—आज हमलोग झूला झूलेंगे—कमरे में ही झूला डालूँगी।

रञ्जन ने कमल को एक बार देखा और पूछा—मैं कहता हूँ, बूढ़ी हो रही हो कि जवान?

साँस रोककर कमल ने पूछा—क्यों?

रञ्जन कुछ ऐसा हँसा कि कमल डर गयी। रञ्जन ने कड़वे ढंग से कहा—क्यों, क्या वैसा न होता, तो झूले की ऐसी साध होती भला! कभी आईने में अपना चेहरा भी देखती हो या अपना रूप सदा अच्छा ही लगता है?

कमल के कलेजे में चोट लगी। रस्सी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ी। वह जल्द-जल्द वहाँ से भाग गयी। उसे रुलाई छूट रही थी। वह उसी कमरे में धँस पड़ी, जहाँ परी मरी थी। फर्श पर लोटकर वह फूट-फूटकर रोने लगी।

सहसा उसे परी की बात याद आयी। मरने के दिन उसने कमल का मुखड़ा देखकर कहा था—रूप किसी दिन मुझे भी था। उस दिन कमल ने सोचा था, यह परी के दुःख का विलाप है। मगर आज उसने समझा, परी उसे श्राप दे गयी है।

'सुनती हो?'—दरवाजे पर से रञ्जन ने उसे पुकारा।

आँसू नहीं झलक जाय, इस शरम से वह उलटकर देख नहीं सकी, चुप पड़ी रही।

रञ्जन बोला—मुझे अभी फौरन फिर बाहर जाना है। लौटने में कोई तीन दिन लगेंगे।

फिर सब चुपचाप। रञ्जन ने कमल के उत्तर का इन्तजार ही नहीं किया, चलता बना। उदास आँखों से वह खुली खिड़की से बाहर की ओर देख रही थी और मन ही मन सोच रही थी—यह क्या उसका वही 'मिर्च' है? उसकी ऐसी उपेक्षा क्यों आखिर? वह उठ बैठी। उसे रञ्जन के वे शब्द याद आये—'आईने में कभी अपना चेहरा भी देखती हो?' ताख से आईना उतारकर उसने अपने चेहरे के आगे रखा—अपनी परिछाईं को एकटक उसमें देखती रही। आज उसकी आँखों में कठोर यथार्थ आया। समय के साथ-साथ उसमें जो क्रमशः परिवर्त्तन हुआ है, वह आज तक उसकी नजर में नहीं आया था—आज आ गया। सच ही तो, आज उसका वह रूप कहाँ है, जो लोगों को पागल बना देता था? चम्पा जैसा रंग तो आज भी है, मगर उसमें वह चिकनापन कहाँ है? बाँका चाँद जैसा कपाल आकार में तो आज भी वैसा ही है, मगर लगता है, आज उसमें ग्रहण लग गया है। उसमें अब न तो वह स्वच्छता ही है, न वह चिकनी चारुता। गाल में वह सुन्दर गढ़ा आज भी उठता है, मगर उसके चारों ओर दुबली लकीरें पड़ने लगी हैं—एक नहीं, तीन-तीन। नाक की नोंक पर काली सिँकुड़न झलकने

लगी है। वह वही कमल है, अंग-अंग वही है, मगर उसका वह नया सौष्ठव आज नहीं है। इस लम्बे अर्से में धरती की धूल-मिट्टी ने उसे मलिन कर दिया है। झटपट उसने आईने को उलट दिया। रोने की इच्छा हुई, रञ्जन की उपेक्षा से नहीं, बल्कि अपने रूप की दुर्दशा पर! आँखों से आँसू की कई बूँदें टपाटप धूल पर गिर पड़ीं।

जैसे बिजली चमक जाती हो, अचानक उसे एक आदमी की याद आ गयी। बूढ़े रसिकदास–बगुलाभगत का चेहरा आज एक युग के बाद उसकी आँखों में तिर आया। कौतुक से दीप्त हँसमुख चेहरा। उसे लगा, वह कमल पर व्यंग्य से हँस रहा है। लेकिन; दूसरे ही दम उसका हृदय इस बात का ज़ोरदार विरोध कर बैठा—हर्गिज नहीं। वह मुझे कृष्ण की पूजा का कमल कहा करता था—वह ऐसा कही नहीं सकता। मेरा नाम तो उसी का रखा हुआ है। फिर उसे परी की याद आयी। वह सिहर उठी। परी जैसे उसका मजाक बना रही है—वैसा ही रूखा-सूखा मरणासन्न मुखड़ा!

तेरह

कई दिन बाद की घटना। आसमान में अभी भी बदली छायी थी। दोपहर के बाद कमल ओसारे में बैठी माला गूँथ रही थी। रञ्जन वही उस दिन जो गया, सो अभीतक नहीं लौटा। वह जैसे कमल की आँख बचाकर कुछ कर रहा है। कमल ने भी किसी तरह की उत्सुकता नहीं जाहिर की। वह मन के दबे हुए अभिमान से कुछ मुरझा-सी पड़ी है। वह बैठी-बैठी गुनगुना रही थी—

सखि, सुख - दुख, भाई - भाई,
सुख के लिये प्रीत जो पालें
दुख की करें कमाई!

इतने में बाहरी दरवाजे को ढँकेलकर कोई अन्दर आया। झाँककर कमल ने देखा, रञ्जन आ रहा था। आज उसके साज-शृङ्गार में एक विशेषता थी। चंदन का तिलक, गले में फूल की

माला, रेशमी धोती और चादर। कमल की आँखें जुड़ा गयीं। आज रञ्जन नवजवान बनकर लौटा। पल-भर में उसके मन का सारा क्षोभ दूर हो गया। वह हाथ की माला लेकर उठ खड़ी हुई। भगवान के लिये गूँथी गयी है तो बला से, आज वह भी नवयुवती बनेगी।

हँसती हुई वह उसके पास गयी और बोली—अच्छा, आज तो पूरे नटवर बन आये हो। वह दोनों हाथ उठाकर रञ्जन के गले में माला डालने गयी, किन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी तरह हत-सी हो गयी, जैसे कोई लकवा का शिकार हो जाता है। जैसे चीख निकल आयी हो, उसने पूछा—महंथ, वह कौन है?

महंथ के पीछे दरवाजे के ठीक सामने एक युवती खड़ी-खड़ी हँस रही थी। देखने में तो वह साँवली ही थी, किन्तु अंग-अंग की चपलता से वह बड़ी मनोहारिणी दीख रही थी। उसका यह रूप सोलहों कला से पूरी तरह खिल रहा था। रञ्जन को कमल की बात का जवाब नहीं देना पड़ा। वह तरुणी अन्दर आ गयी। गजब की चंचल—एक नजर उसे देखते ही उसके स्वभाव की जानकारी हो सकती थी। अपने अंग-अंग में एक हिलोर-सी उठाती हुई उसने ही हँस-हँसकर जवाब दिया—मैं नयी देवदासी हूँ। वह कुछ और आगे बढ़ आयी। बोली—तुम्हीं कमल वैष्णवी हो न? कहाँ तो यह सुना था कि गाने-बजाने में निपुण, रूप में बेजोड़! हाय राम, तो यही तुम हो, ऐसी ही!

उसने एक खास ढंग से होंठ दबाया।

कमल ने आँखें उठाकर जरा देर रञ्जन को एकटक देखा। इस अजीब-से नजारे को देख-देखकर उसके होंठों पर एक विचित्र हँसी खेल गयी। रञ्जन उससे सकुचा-सा गया। वह युवती भी कमल की उस हँसी से कैसी तो हो गयी। अब कमल के बोली निकली। हँसकर बोली—हाँ, वह कमल मैं ही हूँ। खैर, तुम अब महंथ के बायें तो खड़ी हो जाओ, मैं परिछन कर लूँ। अरे हाँ, मैं इतने में बैठनेवाला पटरा ले आऊँ।

वह चौक पूरे हुए उस पटरे को ले आयी, जिसे झूले के लिये उसने जतन से सँवारा था। उसमें दो जने के लिये दो कमल चित्रित थे, जो अभी झकमका ही रहे थे। ठाकुरघर से शंख और घड़ियाल उठा लायी, पानी भरकर मंगलघट सजाया और कहा—अब पटरे पर खड़े हो जाओ।

रञ्जन ने कहा—अरे, रहने दो।

हँसकर कमल बोली—छोड़ क्यों दूँ, यह तो नेग है। तुम पटरे पर खड़े तो हो, परिछन कर लूँ मैं।

शाम को उसने अपने हाथों कोहवर सजा दिया। खुद उस कमरे में वह सोने चली गयी, जहाँ परी ने दम तोड़ा था।

दूसरे दिन वह तड़के ही उठी। नहायी और ठाकुरघर में बैठी। बड़ी देरतक वहीं बैठी रही। वहां से निकलकर वह उन दोनों के कोहवर के दरवाजे पर जा खड़ी हुई। द्वार खुला था। झाँककर देखा, तो रञ्जन अन्दर नहीं दिखायी दिया।

इधर-उधर नजर दौड़ायी। नः, घर में वह कहीं नहीं दीखा। लाचार वह फिर परीवाले कमरे में ही बैठ गयी जाकर। नवागता युवती अबतक नींद की दुनिया में ही खो रही थी।

कुछ देर के बाद रञ्जन लौटा। कमल पर नजर पड़ते ही वह शरमा गया। कुछ घबराया-सा बोला—अच्छी मुसीबत रही, कम्बख्त चरवाहा आया ही नहीं। और वह जाने लगा। कमल से बचने के लिये जैसे कतरा रहा हो। कमल ने हँसकर पुकारा—अरे मिर्च !

एक जमाने के बाद आज उसने रञ्जन को 'मिर्च' कहकर संबोधित किया। अब तक या तो महंथ कहती थी या सिर्फ अजी से ही काम चला लेती थी।

रञ्जन सिर झुकाये खड़ा हुआ आकर।

कमल ने पूछा—आखिर इस तरह मुँह छिपाते क्यों चलते हो ?

उसी प्रकार आँखें झुकाये रञ्जन बोला—मुझे तुम माफ कर दो कमल !

निर्मल स्वर में कमल बोली—अब 'कमल' को छोड़ो, चीनी कहो, चीनी। आज बहुत-बहुत दिनों के बाद तुम मेरे मिर्च हुए, मैं हुई तुम्हारी चीनी ! मगर यकीन मानो, तुमसे मुझे कोई नाराजगी नहीं, भला तुमपर नाराज हो सकती हूँ मैं ?

व्याकुल होकर रञ्जन ने कहा—नहीं, सच-सच बताओ कमल।

—कमल नहीं, चीनी कहो।

लाचारी रञ्जन को कहना पड़ा—सच-सच बताओ चीनी।

हँसकर कमल बोली—नाराज नहीं हूँ, नहीं हूँ; नहीं हूँ। एक-दो-तीन बार कह चुकी। अब आया यकीन ?

रञ्जन ने चाहा कि प्यार से उसे छाती से लगा ले। मगर कमल ने अपने को उससे बचाकर कहा—राम-राम, ऐसा नहीं करते। अब तुम मिर्च हो और मैं चीनी।

वह कमरे से एक पोटली उठा लायी। बोली—अब मुझे विदा दो।

—विदा ?

—हाँ, मैं जाती हूँ।

—और अभी जो तुमने बताया कि तुम नाराज नहीं हो ?

—ठीक है, नाराज मैं नहीं हूँ। लेकिन तुम्हें परी की उस दिन की बात याद है, जिस दिन पहले-पहल मैंने इस घर में कदम रखा था ? मेरी भौंहों पर गौर करो, आप ही याद हो आयगी।

कमल की ओर रञ्जन चुपचाप ताकता रहा। कमल ने कहा—आखिर मैं भी तो परी ही की जाति की हूँ—मेरी छाती के अन्दर भी एक स्त्री का कलेजा है।

वह वैसी ही विचित्र हँसी हँसी।

रँजन ने कमल का हाथ थाम लिया और गिड़गिड़ाकर कहा—ऐसा न करो कमल, ऐसा न करो। वह तुम्हारी दासी

होकर रहेगी। 'तुम्हें तो मालूम ही है, वैष्णवों की साधना ही राधिका की कल्पना पर है—जवानी, खूबसूरती—

कमल ने बीच ही में छेड़ा—बस-बस, बहुत आगे निकल गये हो तुम। ठीक भी है, रूप और यौवन सामने न हो तो जप-योग में रुकावट पड़ती है, राधारानी ध्यान में नहीं आतीं। बहुत ठीक।

हल्के-हल्के हंसकर फिर बोली—तुम तो मेरे गुरु हो। मैं तो तुम्हारे ही दिखाये रास्ते पर जा रही हूँ। मैं भी ठहरी वैष्णवी, मुझे भी तो साधना के लिये एक श्याम किशोर चाहिये।

रञ्जन की बोलती बंद। जब कमल दरवाजे तक पहुँच गयी, तब वह बोला—तो उस श्याम किशोर की ही खोज में निकली हो, क्यों?

हँसकर कमल ने जवाब दिया—हाँ, उसीकी खोज में। आशीर्वाद दो। उसकी हँसी में, उसकी आवाज में न तो व्यंग्य था, न दाव-पेंच, न तकलीफ थी। वह हँसी ही अजीब थी, अजीब ही था वह स्वर।

कमल निकल पड़ी—अजय नदी के किनारे-किनारे। घाट, बैहार, उसके बाद गाँव। गाँव से होकर गुजरनेवाली राह के दोनों किनारे गृहस्थों के घर।

वह सब-कुछ को पीछे छोड़ती हुई आगे बढ़ती गयी। द्वार-द्वार पर, झुकी हुई वाणी में, भीख माँगती। भीख लेकर वह संतुष्ट हृदय के आशीर्वाद से गृही के खाली भिक्षापात्र को भर देती।

खुश होकर औरतें उसे आमन्त्रित करतीं—वैष्णवी, फिर आना।

हँसकर वह कहती, क्यों नहीं, जरूर आऊँगी। तुम्हीं लोगों का तो अवलम्ब है।

उसने हाट-बाजार में गाना शुरू किया। रसिकों ने घेर-घेर प्रश्नों की झड़ी लगानी शुरू की। वह महज मुस्कराकर अपना घूँघट जरा खिसका देती। सुननेवाले हँसकर कहने लगते—जैसा मीठा है तुहारा गला, वैसी ही मीठी है तुम्हारी हँसी।

हँसकर वह कहती—बस, वही तो गरीब की पूँजी है सरकार।

उस दिन घाट-किनारे पेड़ के साये में जब वह रसोई-पानी की जुगत करने लगी, तो उसे रसिकदास की याद हो आयी। याद आते ही उसने दोनों हाथ बाँधकर अपने कपाल से लगाया और बार-बार मन-ही-मन कहने लगी—तुम्हारी साधना सफल हो, सफल हो तुम्हारी साधना। अजय में उतरकर वह नहायी, मैले कपड़े साबुन से फींच डाले और बगुले की पाँख जैसी उस उजली धोती को पहना। आईना सामने रखकर सावधानी से नाक पर रसकली रची। सहसा उसकी आँखें भर आयीं और वह गुनगुना उठी—

सखि कहत बने ना बतिया!

छोड़ मुझे सौतन घर पियवा सुख से काटे रतिया!

मगर अपना यह गीत वह कभी पूरा नहीं कर पाती—अभिशापवाली कड़ी उसके कंठ से बाहर नहीं निकल पाती।

कभी-कभी उसे लगता, उसका पहले का सौंदर्य फिर से लौट आया है और वह उसी कमल-सी खिल उठी है। अपने रूप पर वह आप ही मुग्ध हो जाती और तब गा उठती—

रूप-दरस को रोती आँखें, गुण में हृदय विलीन।
अङ्ग-अङ्ग रोते अंगों की परस हेतु हो दीन॥

अजय के निर्जन किनारे से टकराकर उसकी आवाज उसीके पास लौट आती और वह पेड़ के साये की गिरस्ती उठाकर फिर राह पकड़ लेती।